।।ओ३म्।।

वैदिक-पथ

मासिक

स्मृ० श्री घूडमल आर्य

स्मृ० श्री प्रहलाद आर्य

वेदोक्त विश्व मानवीय सम्वेदनाओं का संवाहक

वर्ष- ८: अंक-४

सृष्टिसंवत्-१,९७,२९,४९,११६

विक्रम-संवत् : २०७२

नवम्बर, २०१५

दयानन्दाब्द-१९१

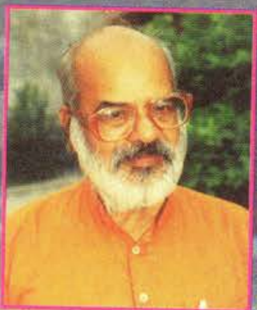

आद्यसम्पादक :

स्वामी जगदीश्वरानन्द

सरस्वती (स्मृतिशेष)

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार

आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी-३२२ २३०

चलभाष : ०९४१४०३४०७२

०९८८७४५२९५९

एक प्रति : १२.०० रु०

ईमेल-aryaprabhakar@yahoo.com

श्री रमेशदत्तजी दीक्षित

वेदनिधि के सहयोगी

श्रीमती अनारोदेवीजी

गाँधी (उ०प्र०)

वेदनिधि-योजना

न्यास के अन्तर्गत चारों वेद व इससे सम्बन्धित उपवेद, गृह्यसूत्र, आरण्यक, दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, महर्षि दयानन्द कृत साहित्य आदि के प्रकाशन की बृहद् योजना है। न्यास के साधन सीमित हैं, अत: आपसे आर्थिक सहयोग की अपेक्षा है। हमने न्यास में वेदनिधि की स्थापना की है जिसके अन्तर्गत एक लाख रुपये देनेवाले सहयोगी का रंगीन चित्र व नाम इस योजना में प्रकाशित होनेवाली प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक संस्करण में दिया जाएगा और भेंटस्वरूप एक संस्करण की तीन प्रतियाँ भिजवाई जाएँगी। हमारा आग्रह है कि पवित्र ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए आप स्वयं तथा अपने परिचितों से यह राशि दिलवाकर पुण्य के भागी बनकर अपना यश प्रसारित कर परिवार में पुस्तकालय का निर्माण करें। अभी तक निम्न उदारमना सहयोगियों से राशियाँ प्राप्त हो चुकी हैं—

०१. स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती,	दिल्ली
०२. आचार्य श्री आनन्दजी पुरुषार्थी,	होशंगाबाद (म० प्र०)
०३. श्री हरिश्चन्द्रजी साहित्यानी,	दाहोद (गुजरात)
०४. श्री गणेशदास गरिमाजी गोयल,	दिल्ली
०५. श्री उपेन्द्रनाथजी चतुर्वेदी,	आगरा (उ० प्र०)
०६. श्रीमती प्रतिभाजी मित्तल,	हिण्डौन सिटी (राज०)
०७. श्री मित्रावसुजी,	माडल टाऊन, दिल्ली
०८. श्री श्रीकृष्णजी, श्रीमती रक्षाजी चोपड़ा	सोलिहुल (यू० के०)
०९. श्री गोपालचन्द्रजी	बरमिंघम (यू० के०)
१०. आर्यसमाज, बैस्ट मिडलैण्ड्स	बरमिंघम (यू० के०)
११. स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी सरस्वती	अलीगढ़ (उ०प्र०)
१२. श्री मनोहरजी विद्यालंकार	दिल्ली
१३. श्री सरस्वतीप्रसादजी गोयल	सवाई माधोपुर (राज०)
१४. डॉ० श्री बलवन्तसिंहजी आर्य	बीकानेर (राज०)
१५. श्रीमती सुवीराजी अंबेसंगे	उद्गीर (महा०)
१६. डॉ० श्री रामावतारजी सिंहल	मेरठ (उ० प्र०)
१७. श्री अशोकजी-गजेन्द्रजी गौतम	जीन्द (हरि०)
१८. राव श्री हरिश्चन्द्रजी आर्य	नागपुर (महा०)
१९. सुश्री उमाजी भल्ला	अम्बाला छावनी (हरि०)
२०. श्री रामेश्वरदयालजी गुप्ता	नई दिल्ली
२१. श्री ओम्प्रकाशजी अग्रवाल	उज्जैन (म० प्र०)
२२. श्रीमती विमलाजी गुप्ता	ब्यावरा (म० प्र०)
२३. श्री बृजकिशोरजी मित्तल	कोटा (राज०)
२४. श्रीमती सुमनजी आर्या, श्री सदानन्दजी वानप्रस्थ	फर्रुखाबाद (उ०प्र०)
२५. श्री शत्रुघ्नजी, श्रीमती सुशीलाजी गुप्ता	राँची (झारखण्ड)
२६. श्री दयालदासजी आहूजा	रायपुर (छत्तीसगढ़)
२७. श्री सत्यप्रकाशजी गुप्ता	हरिद्वार (उत्तरा०)
२८. श्री देवकीनन्दनजी गुप्ता	नई दिल्ली
२९. श्री रमेशदत्तजी दीक्षित	गाँधी (उ०प्र०)

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास का मुखपत्र

वैदिक पथ

धार्मिक, सामाजिक, मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष-८, अंक-४

सृष्टिसंवत्-

१,९७,२९,४९,११६

विक्रम-सम्वत्-२०७२

नवम्बर, २०१५

दयानन्दाब्द-१९१

हिण्डौन सिटी, पृष्ठ-४८

आद्यसम्पादक :

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती (स्मृतिशेष)

प्रधान सम्पादक :

डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री

सम्पादक :

प्रभाकरदेव आर्य

संयुक्त सम्पादक :

आर्यमुनि वानप्रस्थ

स्वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रभाकरदेव आर्य के लिए वर्द्धमान ऑफसेट प्रिन्टर्स, एच-७७, इण्डस्ट्रियल एरिया, हिण्डौन सिटी (करौली) में मुद्रित एवं श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास ब्यानिया पाडा, हिण्डौन सिटी (राज०) से प्रकाशित।

चल० : ०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९

सम्पादक-**प्रभाकरदेव आर्य**

पंचवार्षिक शुल्क : ५५० रु०

आजीवन शुल्क : १५०० रु०

एक प्रति : १२ रु०

Email-aryaprabhakar@yahoo.com

अनुक्रम

सम्पादकीय -डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री	२
हृदय मन्दिर के भाव बोलते हैं -प्रभाकरदेव आर्य	५
समाचार-पथ	६
स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्थिक चिन्तन -डॉ० रामकृष्ण आर्य	८
ऋषि दयानन्द का जोधपुर-प्रवास तथा बलिदान-दिवस -डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री	१८
आचार्य शंकर और उनका अद्वैतवाद -पं० श्री रामचन्द्र आर्य	२४
मेला चाँदापुर विषयक जिज्ञासा -भावेश मेरजा	३३
स्वामी श्रद्धानन्द के जन्म का वर्ष -आर्यमुनि वानप्रस्थ	३४
साहित्यिक सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान और डॉ० रामविलास शर्मा -डॉ० राजश्री शुक्ला	३५
पौराणिक पण्डित माधवाचार्य से मेरा शास्त्रार्थ -डॉ० महावीर मीमांसक	४६

नोट : इस अंक में प्रकाशित लेख, कविता व अन्य सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में सीधे लेखक से सम्पर्क करें।

सम्पादकीयम्—

बिहार-चुनाव का सन्देश

२०१४ ई० के लोकसभा के चुनाव के बाद भारतीय राजनीति की दशा और दिशा को एक जबर्दश्त मोड़ देने वाला बिहार-चुनाव का परिणाम आ गया है। ऐसा परिणाम अप्रत्याशित ही नहीं चुनौतीपूर्ण भी है। मैंने तो ऐसे परिणाम की कल्पना भी नहीं की थी। इस चुनाव से क्या सन्देश निकलते हैं?

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए

यह एक कड़वी सच्चाई है कि R.S.S. के प्रमुख श्री मोहन भागवत का आरक्षण सम्बन्धी बयान भाजपा की हार का प्रमुख कारक बना। यद्यपि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपनी गलती नहीं मानेगा और भाजपा में एकाध को छोड़कर किसी में इस तथ्य को स्वीकार करने का साहस भी नहीं है। अतः संघ आगे से विशुद्ध राजनीतिक मसले पर कुछ न बोले, इसी में उसका और भाजपा का भी भला है।

भाजपा के लिए

बिहार में और उत्तरप्रदेश में भी पिछड़ी, अतिपिछड़ी, दलित और महादलित वर्ग का कोई रसूखवाला नेता नहीं है। कल्याण सिंह और उभाभारती क्रमशः राज्यपाल और केन्द्रीय सरकार में हैं। इस वर्ग का नेतृत्व विकसित करने के लिए श्री मोदीजी और श्री अमित शाह को प्रयास करना होगा और भाजपा के हितेच्छुकों को भी। नेतृत्व थोपने से नहीं होता उसके लिए उनके बीच रहने, उनके लिए संघर्ष करने और ईमानदार छवि का होने की जरूरत है। आखिर राजद, जदयू, सपा और बसपा के प्रति ही इन वर्गों का झुकाव क्यों होता है? इसकी गहराई में जाने की जरूरत है। "**अनायकाः विनश्यन्ति, विनश्यन्ति बहुनायकाः।**" अर्थात् नेतृत्वविहीन और बहुनायकों वाले संगठन का सफल होना मुश्किल है। बिहार में प्रान्तीय नेतृत्व में एकता नहीं थी और मुख्यमन्त्री पद के अनेक दावेदार थे। इसके विपरीत राजद और जदयू में नेतृत्व का संकट नहीं था और मुख्यमन्त्री पद हेतु नीतीश कुमार पर कोई विवाद भी नहीं था।

अन्य दलों के लिए

इस चुनाव का संदेश गैर भाजपाई दलों के लिए भी है। वह यह कि उनकी जीत का मतलब यह नहीं है कि वे जंगलराज या अराजकता की

वापसी करें। जिस जंगलराज के लिए लालू प्रसाद जाने जाते हैं, यदि उसकी वापसी हुई तो 'पुनर्मूषको भव' को भी वे नहीं रोक सकेंगे। काँग्रेस और इनके सहयोगी दलों से जनता की नाराजगी का कारण इनका बेलगाम भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण और सुशासन के लिए भी नीतीश कुमार पर बिहारी जनता ने भरोसा जताया है और इस भरोसे को उन्हें बरकरार रखना होगा। गैर भाजपाई दलों के अन्य नेता भी श्री नीतीश की स्वच्छ छवि से प्रेरणा ले सकते हैं।

हिन्दुओं के लिए

हिन्दू समाज की राष्ट्रीय, राजनीतिक या जातीय चेतना कभी-कभी ही जगती है ज्यादातर सोई रहती है। इस बार भी सोई रही। हिन्दुओं का बहुसंख्यक वर्ग धार्मिक अन्धविश्वासों, निरर्थक कर्मकाण्डों, मूर्खतापूर्ण फलित ज्योतिषीय मान्यताओं तथा तान्त्रिक अभिचारों से आक्रान्त है। मुस्लिम समुदाय की राजनीतिक जागृति तथा विस्तारवादी नीतियों से कोई सीख नहीं लेता हिन्दू-समाज। डॉ० भगवान् दास कहते थे कि मुझे अपने देश में खोजने पर भी कोई हिन्दू नहीं मिलता, सबके सब अपनी जातीय पहचान ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, अग्रवाल, जायसवाल, अहीर, जाट, गूजर, बनिया, मोची, धोबी, मुशहर-सवर्ण-असवर्ण, स्पृश्य-अस्पृश्य और अन्त्यज के खाँचे में बँटे हुए हैं। हिन्दू अपनी इन मूर्खताओं और जाति की पहचान से कब मुक्त होंगे?

मोदी और शाह के लिए

इस चुनाव-परिणाम से प्रधानमन्त्री श्री मोदी और भाजपा अध्यक्ष श्री अमित शाह भी सीख ले सकते हैं। आक्रामक चुनाव प्रचार का भी खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा है। लोक-सभा के २०१४ के चुनाव में तो वह वक्त की माँग थी। परन्तु दिल्ली तथा बिहार में उसी आक्रामक प्रचार की आवृत्ति मँहगी पड़ी। उन्हें नीतीश या लालू को आरोपित किये बिना केवल विकास के लिए वोट माँगना चाहिए था। लोक-सभा में नीतीश और लालू पराजित हो चुके थे, उन्हें पुनः-पुनः आरोपी बनाये जाने से उनके जातीय-समूह अपमानित अनुभव करने लगे। आशा है, मोदी इससे नयी सीख लेंगे। अपने समर्थकों और प्रशंसकों को अपने से जोड़े रहना आत्मीय सम्बन्धों को और अधिक विकसित करना नायक का कर्त्तव्य होता है। जैसे अपने से हुई भूलों और गलतियों को स्वीकार कर उसे छोड़ देना चाहिए उसी प्रकार अपने मित्रों तथा हितेच्छुकों की छोटी-मोटी गलतियों को दरकिनार कर अपने से जोड़े रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में मोदी चूक रहे हैं। बाबा रामदेव, डॉ० वैदिक, रामजेठमलानी, चुनाव

प्रबन्धक प्रशान्त किशोर आदि आज मोदी से दूर क्यों हो रहे हैं? अरुण शौरी, आर० के० सिंह, शत्रुघ्न सिन्हा, यशवन्त सिन्हा इन लोगों से मोदी को मिलना चाहिए, इनकी शिकायतों या गलतफहमियों को दूर करना चाहिए। इन्हें अपने से दूर और दूर कर देने से क्या मोदी का भला हो सकेगा? सामान्य जन-जीवन और ग्रामीण समस्याओं से भली-भाँति सुपरिचित राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री श्री भरत झुनझुनवाला तथा राजनय तथा राष्ट्रवादी चरित्र के स्वामी सुब्रह्मण्यम स्वामी की योग्यता से लाभ उठाने में मोदी को क्या दिक्कत है?

आर्यसमाज के लिए

(१) मूर्त्तिपूजा और (२) जन्मना जातिवाद हिन्दू-समाज के सबसे बड़े ये दो अभिशाप हैं। जन्मना जातिवाद का सबसे बड़ा असर भारतीय राजनीति में पड़ता है। इसको कैसे समाप्त किया जाए? इस विषय पर सोचनेवाला कोई कारगर संगठन नहीं है। स्वतन्त्रता से पूर्व 'जात-पात तोड़क मण्डल' लाहौर में कार्यरत था, आर्यसमाज तब जीवित और जागृत संस्था थी। डॉ० लोहिया और डॉ० आम्बेडकर का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व था जो जातिवाद का विरोधी था। अब देश में राजनीतिक या गैर राजनीतिक कोई संस्था नहीं है जो जातिवाद के उन्मूलन में लगी हो। सैद्धान्तिक दृष्टि से आर्यसमाज जन्मना जातिवाद का विरोधी है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ५ प्रतिशत आर्यसमाजी भी जन्मना जाति-पाति को तोड़कर विवाह नहीं करते, तब जातिवाद का यह महारोग हिन्दुओं से कैसे हटेगा? राजनीतिक दल इसे राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं? कम से कम आर्यसमाज और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इन दोनों संगठनों को इस विषय पर व्यापक सहमति बनानी पड़ेगी, इसके बिना हिन्दू-समाज की एकता कथमपि सम्भव नहीं है। मूर्त्तिपूजा के पाखण्ड से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तो मुक्त नहीं हो पायेगा, किन्तु जातिवाद के ज़हर से छुटकारा पाने हेतु आर्यसमाज या इस प्रकार की किसी भी हिन्दूवादी संस्था से मिलकर उसको काम करने की जरूरत है। इस विषय में स्वामी अग्निवेश बहुत अच्छा नेतृत्व कर सकते थे, किन्तु उनकी राजनीतिक लोकैषणा ने उन्हें कहीं का न छोड़ा। राजनीतिक क्षेत्र को छोड़कर केवल सामाजिक क्षेत्र में काम करना और इसी आन्दोलन में अपने को खपाने का साहस करना सबके बूते की बात नहीं है। क्या आर्यसमाज के कर्णधार या आर्य-विचारधारा के मनीषी और आर्य युवक इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं?

-ज्वलन्त शास्त्री
चल० : ०९४१५१८५५२१

हृदय मन्दिर के भाव बोलते हैं—

सभा-सम्मेलनों के लाभ

हम अपने दैनिक जीवन में प्राय: यह समीक्षा करते रहते हैं कि अमुक धर्मगुरु की सभा में इतने श्रद्धालुओं ने भाग लिया। उस राजनेता की सभा में इतने लोग एकत्रित हुए। फलाँ संस्था की सभा या सम्मेलन में इतनी उपस्थिति रही। हम प्राय: उपस्थिति के आधार पर सफलता निश्चित करते हैं। ऊपरी रूप से यह सही भी लगता है। आयोजकों का उत्साह इस भीड़ के सहारे बढ़ता-घटता रहता है। इन सबसे हटकर एक ठोस चिन्तन यह भी है कि जिस उद्देश्य के लिये सभा या सम्मेलन आयोजित किया गया उसके प्रति समर्पित व्यक्ति कितने प्रतिशत उपस्थित हुए।

यह तो कठिन-सा लगता है कि सारे व्यक्ति उद्देश्य के प्रति निष्ठा व समर्पण रखनेवाले हैं। उस सभा-सम्मेलन की उपलब्धि इन्हीं जनों के ऊपर निर्भर करती है। चुनाव सभाओं में प्राय: श्रोता कम दर्शक अधिक आते हैं। उन्हें जिसे वोट देना है वहाँ जायें या नहीं परन्तु जिसे वोट नहीं देना है उसकी सभा में इसलिये जाते हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व बड़ा धांसू है लेकिन जिस पार्टी में वह है, वह या उसका नेतृत्व उसके लिये उपयुक्त नहीं है।

धार्मिक कार्यक्रमों में श्रोता व दर्शक दोनों ही रहते हैं परन्तु हमें लगता है वहाँ भी चमक-दमक व प्रवचनकर्त्ता के आकर्षक व्यक्तित्व के कारण भी भीड़ जुटती है।

यह सभी क्रम जहाँ नकारात्मक चिन्तन को जन्म देते हैं वहीं इसके लाभों से मना नहीं किया जा सकता। लकड़ी से अग्नि जलने के लाभ प्रकाश-ऊर्जा आदि हैं तो कार्बनडाई ऑक्साइड भी निकलती है।

सितम्बर माह में हिण्डौन सिटी में हुए कार्यक्रम में छह प्रान्तों से पाँच सौ के लगभग आत्मीय जन उपस्थित रहे। हमारा उत्साह देखने लायक था। हम अपने आपको अकेला नहीं अपितु भरे पूरे परिवार का अंग समझ रहे थे। आयुर्वेदाचार्य श्री बालकृष्णजी, अमर शहीद सरदार भगतसिंहजी के भतीजे सरदार श्री किरणजीतसिंहजी, आर्य विद्वान् डॉ० सोमदेवजी शास्त्री, श्री प्रियव्रतदासजी, डॉ० श्री विनोदचन्द्रजी विद्यालङ्कार तथा पं० श्री ब्रजपालजी शर्मा 'कर्मठ' की उपस्थिति ने हमारा उत्साहवर्धन किया है। बहिन अञ्जलि आर्या की भावुक तथा समर्पित उपदेश शैली में हमें भविष्य की अपेक्षायें पुष्पित होती दृष्टिगत हुईं।

रात्रिकालीन संगीत सभा में हमने पर्याप्त समय लेकर न्यास के क्रिया कलापों की चर्चा तथा उपस्थित जनों से अपेक्षायें रखी। हम इस कार्यक्रम की सफलता का आकलन किस प्रकार करते हैं यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उपस्थितजन करते हैं या करेंगे। आप स्वयम् विचार करें हमारे सीमित साधनों में सम्पन्न हुआ यह कार्यक्रम कितना सफल रहा और भविष्य में इसकी क्या सम्भावनायें हैं।

-प्रभाकरदेव आर्य

मुस्लिम महिलाओं से भेदभाव पर सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई

सुप्रीम कोर्ट मुस्लिम महिलाओं से भेदभाव के सम्बन्ध में एक जनहित याचिका पर १४।१२ के बाद सुनवाई करेगा। यह याचिका खुद शीर्ष कोर्ट ने अपनी तरफ से दर्ज की है। यह तलाक या पति के दूसरी शादी कर लेने पर मुस्लिम महिलाओं से होने वाले भेदभाव से जुड़ी है।

शीर्ष कोर्ट को सुनवाई में बताया गया कि अटार्नी जनरल मुकुल रोहतगी को नोटिस की तामीली नहीं कराई जा सकी है। इस पर चीफ जस्टिस एचएल दत्तू और जस्टिस अमिताव रॉय की बेंच ने सुनवाई आगे बढ़ा दी। इससे पहले जस्टिस एआर दवे ने इस मुद्दे पर जनहित याचिका दर्ज कर उसे नई बेंच के सामने पेश करने को कहा। बेंच के मुताबिक यह केवल नीतिगत मुद्दा नहीं है। बल्कि महिलाओं को संविधान के तहत मिले मौलिक अधिकारों से जुड़ा है। उन्होंने चीफ जस्टिस से इसके लिए उपयुक्त बेंच बनाने का आग्रह किया था। इसके बाद मामले में कोर्ट की मदद के लिए अटार्नी जनरल और राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण को नोटिस जारी करने के आदेश दिए गए। इन पर २३ नवम्बर तक जवाब माँगा गया था।

संघाई का सुरक्षा मॉडल देश में लागू होगा : राजनाथ

चीन के संघाई शहर जैसा सुरक्षा मॉडल भारत के भीड़-भाड़ वाले शहरों में भी लागू किया जाएगा। यह बात गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने कही। यह बात चीन यात्रा पर कही। उन्होंने चीन के सबसे बड़े शहर शंघाई का सुरक्षा मॉडल देखा।

राजस्थान में प्रारम्भ होंगे २-२ करोड़ रुपए के २९५ प्रोजेक्ट

मुख्यंत्री जल स्वावलंबन अभियान के अन्तर्गत भू-जल संरक्षण कार्य के लिए राज्य में २९५ प्रोजेक्ट प्रारम्भ होंगे। हर प्रोजेक्ट पर करीब २ करोड़ रुपए के कार्य करवाए जाएँगे। ग्रामीण विकास एवं पंचायती राजमंत्री सुरेन्द्र गोयल की अध्यक्षता में हुई जल ग्रहण विकास कार्यक्रम की बैठक में यह जानकारी दी गई।

ग्रामीण विकास मंत्री ने कहा कि आगामी २७ जनवरी से प्रदेश के ३ हजार गाँवों में एक साथ मुख्यमंत्री जल स्वावलंबन अभियान प्रारम्भ होगा। उन्होंने कहा कि यह अभियान आम जनता की सक्रिय सहभागिता से संचालित होगा। अभियान के अन्तर्गत होने वाले कार्य का निर्धारण

सिंचाई विभाग, वनविभाग, जलदाय विभाग एवं वाटर शैड विभाग संयुक्त रूप से गाँव में उपलब्ध होने वाले वर्षा जल एवं उसके संरक्षण कोर देखते हुए किया जा रहा है। गोयल ने कहा कि अभियान के अन्तर्गत जन भागीदारी के साथ स्थायी महत्त्व के जल संरक्षण के कार्य हों इसके लिए अभियान से जुड़ने वाले सभी अधिकारियों, कर्मचारियों को सघन प्रशिक्षण दिया जाए। जिला स्तर पर प्रशिक्षण देने के लिए लगभग १८ हजार व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा चुका है।

राजस्थान में १३ हजार स्कूलों में तय होंगे ३०० करोड़ के विकास कार्य

सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के लिए आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए प्रदेश के १३ हजार स्कूलों में एक साथ रूपरेखा तैयार की जाएगी। स्कूलों के खाते में छात्र कोष और विकास कोष के रूप में जमा ३०० करोड़ रुपए जमा हैं। इसका सही प्रकार से उपयोग नहीं हो पा रहा। इस कारण शिक्षा विभाग ने २८ नवम्बर को स्कूल समय में विद्यालय विकास एवं प्रबन्धन समिति (एसडीएमसी) की बैठक बुलाई है। बैठक प्रदेश के सभी १३,४८८ स्कूलों में एक साथ आयोजित होगी। इसके लिए माध्यमिक शिक्षा निदेशालय ने आदेश जारी किया है।

निदेशालय की ओर से जारी आदेश के अनुसार बैठक में उपस्थित समिति के सदस्यों और ग्रामवासियों को जानकारी देनी होगी कि स्कूल के खाते में कितना बजट शेष है। अब तक किस काम पर कितना बजट खर्च हुआ। इसका पूरा ब्योरा प्रिंसिपल को समिति के सामने रखना होगा। साथ ही बैठक में उपस्थित लोगों से सुझाव लिया जाएगा कि शेष बजट का किस प्रकार छात्र और स्कूल हित में उपयोग किया जा सकता है।

नर्मदा के किनारे स्थापित १५२ पुट के स्वामीनारायण

गुजरात में नर्मदा के किनारे बसे पोईचा गाँव में स्वामीनारायण की १५२ फुट की विशाल प्रतिमा स्थापित की गई है। डेढ़ करोड़ की लागत से बनी यह प्रतिमा 'सहजानन्द यूनिवर्स' का हिस्सा है। इसमें रामायण-महाभारत काल सहित ११०० प्रतिमाएँ लगाई गई हैं। सहजानन्द यूनिवर्स २४ एकड़ में है जबकि पूरा मंदिर परिसर १०५ एकड़ में। परिसर में १५२ विराट प्रतिमाएँ, वॉटर शो, लेजर शो, डांसिंग फव्वारा, नौका विहार, चेंज ऑफ लाइफ जो, थ्री एलिमेंट्स एक्वेरियम, हॉरर हाउस, मिरर हाउस, साइंस सिटी व एम्यूजमेंट पार्क भी है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्थिक चिन्तन

–डॉ० रामकृष्ण आर्य

[प्रस्तुत लेख, लेखक का प्रकाशित शोध प्रबन्ध 'स्वामी दयानन्द का आर्थिक चिन्तन' (प्रकाशक-आर्य परिवार प्रकाशन समिति, विज्ञाननगर कोटा [राज०] से १९९१ ई० में प्रकाशित) से लिया गया है। इस ग्रन्थ के अध्याय-१३ उपसंहार, पृ० २५४ से २६५ तक की सामग्री को समुचित काट-छाँट कर मैंने यथोचित करने का प्रयास किया है—सम्पादक]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज शब्द एक व्यापक आशय रखता है, जिसमें मानव के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आदि समस्त क्रिया-कलाप आ जाते हैं। अच्छे समाज से अच्छा राष्ट्र बनता है। इसलिये जहाँ महर्षि दयानन्द को राष्ट्रीय पुनर्जागरण का अग्रदूत कहा जाता है वहाँ उन्हें सामाजिक पुनर्जागरण का अग्रदूत या समाज-सुधारक भी कहा जाता है।

एक अच्छा मनुष्य, अच्छा समाज और अच्छा राष्ट्र बनाने का उन्होंने भरसक प्रयास किया था और अन्त में इसी प्रयास की पूर्ति हेतु अपना बलिदान भी दे दिया। उन्होंने वह सब कहा और लिखा भी कि जिससे सम्पूर्ण संसार के मनुष्य ही नहीं प्राणीमात्र सुखी और सन्तुष्ट हों। इसलिए उन्होंने अपने द्वारा संस्थापित आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना रखा। पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धान्त-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में उनके उपर्युक्त तीनों उपकार समाविष्ट हो जाते हैं।

उनके आर्थिक विचार मनुष्य, समाज और राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के परिचायक हैं। जो किसी राष्ट्र विशेष (भारत) समाज विशेष और समुदाय विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी सम्पूर्ण विश्व के साथ उनका तारतम्य दिखता है। स्वामीजी वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वेद उनकी दृष्टि में स्वतः प्रमाण और समस्त मानव जाति के लिये ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। इसलिये उनका चिन्तन समस्त मानव जाति और सम्पूर्ण विश्व के लिए था। पर उन्होंने विश्व एकता के लिये विश्व-सुधार का प्रयास, भारत-सुधार से प्रारम्भ किया था। उनका आर्थिक चिन्तन भी इसी प्रयास का एक अंग है। प्रचलित अर्थ में कोई उन्हें अर्थशास्त्री कहे या न कहे पर राष्ट्रोन्नति के प्रसंग में उन्होंने अर्थ-व्यवस्था के विषय में जितना कहा, किया और लिखा, वह उनको महान् अर्थशास्त्री चिन्तक कहलाने में पर्याप्त है।

(१) **अर्थशास्त्र का परिचय**–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राचीन भारतीय समाज–व्यवस्था के मूल आधार हैं। अत: अर्थशास्त्र, धर्म के बाद मनुष्य के दूसरे पुरुषार्थ से सम्बन्ध रखता है।

प्राच्यविद्या के अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों में 'अर्थ' सत्ता और सम्पत्ति के योग का नाम है। इस दृष्टि से उस समय 'अर्थ' एक व्यापक अर्थ रखने वाला शब्द था। कौटल्य के अर्थशास्त्र में आई अर्थशास्त्र की परिभाषा यह है– मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते हैं। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में अर्थ प्राच्य और पाश्चात्य दोनों आशयों को प्रकट करता है। यथा–अर्थ अर्थात् राज्यधनादि, अर्थ–सुवर्णादि–रत्न और अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य बढ़ाने वाला है इत्यादि। परन्तु इस शोध–निबन्ध में अर्थ का आशय पाश्चात्त्य अर्थशास्त्र के अनुसार धन, सम्पत्ति, जीवित रहने के सभी भौतिक साधनों एवं सभी आर्थिक वस्तुओं से लिया है। इसका स्वरूप केवल भौतिक ही नहीं है अपितु धर्म और अध्यात्म के साथ उसका सामञ्जस्य है अर्थात् अर्थ वह है जो धर्म से प्राप्त किया जाए।

(२) **महर्षि दयानन्द के आर्थिक विचारों की पृष्ठभूमि**–महर्षि दयानन्द की आर्थिक विचारधारा की पष्ठभूमि मूलरूप से आर्ष ग्रन्थ–वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, शुक्रनीति और कौटल्य का अर्थशास्त्र आदि पर आधारित थी। इनमें कौटल्य के अर्थशास्त्र की उन्होंने अपने ग्रन्थों में कहीं भी चर्चा नहीं की है। जबकि कौटल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित आर्थिक विचारों की बहुत सीमा तक उनके आर्थिक विचारों से समानता प्रकट होती है। तथ्य यह है कि उस समय तक कौटल्य के अर्थशास्त्र की खोज नहीं हुई थी अर्थात् वह महर्षि को उपलब्ध नहीं था।

कौटल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित आर्थिक विचार प्राचीन अर्थशास्त्रीय साहित्य के अन्तर्गत प्रामाणिक माने जाते हैं। मनु आदि के विचारों की भाँति कौटल्य के आर्थिक विचारों का आधार भी त्रयीविद्या (वेद) है। इसीलिये महर्षि दयानन्द के आर्थिक विचारों की पृष्ठभूमि में अर्थशास्त्र को भी जोड़ा गया है। परन्तु कौटल्य के अर्थशास्त्र सहित उपर्युक्त ग्रन्थों के उन विचारों को छोड़ दिया है जो स्वामीजी के द्वारा प्रतिपादित वैदिक विचारों के प्रतिकूल हैं।

(३) **महर्षि दयानन्दकालीन दयनीय अर्थव्यवस्था**–१९वीं शताब्दी में जानबूझकर अंग्रेजी सरकार द्वारा नष्ट की हुई देश की ब्रिटिशकालीन अर्थव्यवस्था को महर्षि दयानन्द ने अपनी आँखों से देखा था और उस

विषय में कुछ करने का निश्चय भी किया था। तदर्थ उनकी मृत्यु के तीन-चार वर्ष पूर्व उनके प्रचार-विषयों में देश का आर्थिक-सुधार ही प्रमुख विषय रहा, जो उन्होंने देशी राजाओं के राजनीतिक सुधार के साथ प्रारम्भ किया था।

दयानन्दीय जीवन चरित साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि ने अर्थव्यवस्था पर सैद्धान्तिक रूप से विचार ही नहीं किया, अपितु देश की अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिये अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से कुछ करने का प्रयास भी किया था। इनमें गौ आदि पशु-रक्षा एवं भारतीय युवकों को कला-कौशल सीखने हेतु जर्मनी भेजने पर विचार के प्रयत्न मुख्य हैं।

महर्षि दयानन्द में एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री के गुण भी थे। उनके पत्र-व्यवहार से पता लगता है कि उन्होंने वैदिक यन्त्रालय का संचालन, प्रबन्ध, प्रशासन और हिसाब (लेखा) निरीक्षण पूर्णतया अर्थशास्त्रीय (उद्योग-व्यवसाय और व्यापार प्रबन्धन) विधि-विधान से किया था।

(४) **मानव की आवश्यकताएँ और महर्षि दयानन्द**-महर्षि दयानन्द धर्माचार्य के रूप में अतिप्रसिद्ध थे। इसलिये उनके विषय में प्रायः यह भ्रम फैलाया जाता रहा है कि वे तो मोक्षगामी थे। उनका मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं से क्या लेना देना था? उनके आर्थिक विचारों की **गोकरुणानिधिः** एक छोटी-सी पुस्तक है जिसमें उन्होंने रोटी, कपड़ा और मकान आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की स्पष्ट चर्चा की है।

इसी प्रकार उन्होंने अपने ग्रन्थों में गौण आवश्यकताओं की भी विस्तार से चर्चा की है। प्रबन्ध में जो सात मौलिक इच्छाओं को गिनाया गया है। उनमें से प्रजा (सन्तान) की आवश्यकता ही गौण आवश्यकताओं की मूलाधार है।

प्रजा-सन्तान का मूल, मन के संकल्प तथा इन्द्रियों के कर्म या काम और रति है। इसी से स्त्री, पुत्र, बनाव, चुनाव, शोभा, शृंगार, पशु, बाग-बगीचे, ठाट-बाट, कला, मनोरंजन आदि उपभोग के साधन अर्थात् धन आदि प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

(५) **संयमित उपभोग**-महर्षि दयानन्द का वर्तमान अर्थशास्त्र के उपभोग विषयक दृष्टिकोण से एक मौलिक अन्तर भी है कि अनियोजित विपुल उत्पादन तथा स्वतन्त्र और स्वच्छन्द उपभोग (वितरण) राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं का हल नहीं है, न नियोजित विपुल उत्पादन और समान वितरण (उपभोग) हल है। अपितु उनकी दृष्टि से हल है, नियोजित विपुल उत्पादन, समुचित वितरण, और संयमित उपभोग अर्थात् उपभोग,

श्रम, आवश्यकता और योग्यतानुसार हो तभी सबको आवश्यक उत्पादित वस्तुएँ उपलब्ध हो सकेगी और राष्ट्र में कोई किसी वस्तु के अभाव से पीड़ित नहीं रहेगा और न कोई आवश्यकता से अधिक जरूरत की वस्तुओं का संग्रह कर पाएगा।

(६) **स्वदेशी उपभोग**–महर्षि दयानन्द का उपभोग विषय में दूसरा अन्तर यह है कि वे उपभोग में स्वदेशी भावना को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, अर्थात् प्रत्येक देशवासी स्वदेश में उत्पन्न हुई वस्तुओं का ही प्रयोग करे। इसके दो लाभ होंगे। प्रथम–विदेशी मुद्रा की बचत और द्वितीय–देश में वस्तुओं का विपुल उत्पादन।

बहुत कम लोग जानते हैं कि स्वदेशी आन्दोलन के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द थे। आम धारणा यह है कि बंग–भंग आन्दोलन (सन् १९०५) से स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था। जब कि इस आन्दोलन के ३०–३५ वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने लोगों को स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने की ओर प्रेरित किया था।

(७) **उपभोग और राज्य**–महर्षि दयानन्द आवश्यकताओं की पूर्ति करने की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व राज्य का मानते हैं। आज की भाषा में यदि कहा जाए तो देश के संविधान में नागरिकों के लिये रोजगार का मौलिक अधिकार होना चाहिए और सरकार का यह दायित्व होना चाहिए कि सर्वप्रथम देश में अनिवार्य, समान एवं निःशुल्क शिक्षा द्वारा सबको उन्नति के समान अवसर प्रदान करे तथा सबको श्रम, योग्यता और आवश्यकतानुसार भरण–पोषण के साधन उपलब्ध कराए।

(८) **उत्पादन**–अर्थशास्त्र में उत्पादन के पाँच साधन गिनाये गये हैं–यथा–भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। उत्पादन के साधनों पर ऋषि के जो विचार प्रकट हुए हैं उनसे लगता है कि महर्षि ने अपने वेदभाष्यादि ग्रन्थों में इनकी व्याख्याएँ अर्थशास्त्रीय उत्पादन को ध्यान में रखकर की हैं। उनके ग्रन्थों से उत्पादन के ५ क्षेत्र निर्धारित होते हैं–(१) कृषि (२) पशुपालन (३) वनसम्पदा (४) पर्वतसम्पदा अथवा खनिज (५) शिल्पकला, विज्ञान, उद्योग, व्यवसाय। वर्तमान में भी ये ही पाँचों क्षेत्र उत्पादन के मुख्य क्षेत्र गिने जाते हैं।

(९) **कृषि और पशुपालन**–महर्षि ने खेती पर अपने वेदभाष्य आदि में प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार किया है। एक कुशल कृषि अभियन्ता की तरह उन्होंने कृषकों को खेती करने का प्रशिक्षण, उन्नत बीज एवं सात्विक अन्न पैदा हो, इस प्रकार के उर्वरकों का प्रयोग, भूमि–परीक्षण, खेती करने के उन्नत औजार, सिंचाई के लिये नहरों, कृत्रिम जलाशयों,

बाँधों इत्यादि का निर्माण और वर्षा हेतु यज्ञ करवाने आदि की अपने ग्रन्थों में विस्तार से चर्चा की। वे यान्त्रिक कृषि के भी विरोधी नहीं थे। परन्तु उन्होंने पशु आधारित खेती करने को ही प्राथमिकता दी और पशुओं की रक्षा और संवर्धन पर विस्तार से विचार ही नहीं किया अपितु व्यवहारिक रूप में अनेक प्रयास भी किये। गोकरुणानिधि पुस्तक उनके इन्हीं विचारों का व्यावहारिक रूप है। उन्होंने इस पर भी बल दिया था कि **गोकृष्यादिरक्षिणी सभा** की स्थापना कर कृषि व पशुरक्षा के विषय में कुछ व्यावहारिक प्रयास निरन्तर चलते रहें। अश्वमेध और गोमेध आदि श्रौत यज्ञों में पशु-सुरक्षा एवं संवर्धन विषयक छिपे अर्थशास्त्र को उन्होंने प्रकट कर यह सिद्ध किया कि पशुओं के संवर्धन और नस्ल-सुधार के लिये पशुयाग होने चाहिए न कि मानव ऐषणाओं की पूर्ति के लिये श्रौतयज्ञों में पशुओं की हिंसा की जाए अथवा उनके माँस की आहुति दी जाए।

(१०) **वनसम्पदा और पर्वतसम्पदा**-वनसम्पदा, पर्वतसम्पदा और खनिज आदि का दोहन करते समय उनका दृष्टिकोण यह रहा है कि दोहन इस प्रकार से किया जाए कि प्रकृति असन्तुलित अथवा पर्यावरण दूषित नहीं हो। इस विषय में 'गोकृष्यादिरक्षिणी सभा' का दूसरा नियम अवलोकनीय है-**जो पदार्थ सृष्टिक्रमानुसार जिस-जिस प्रकार से अधिक उपकार में आवे उस-उसके आप्ताभिप्रायानुसार यथायोग्य सर्वहित सिद्ध करना इस सभा का परम पुरुषार्थ है।**

(११) **शिल्पकला, विज्ञान, उद्योग और व्यवसाय की उन्नति**-महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान को पाश्चात्य विज्ञान से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए नौविमानादि यान-निर्माण एवं अन्य अणु आदि वैज्ञानिक प्रयोगों के लिये जल, अग्नि, विद्युत, वायु आदि भौतिक विज्ञान की आधारभूत शक्तियों के विधिवत् प्रयोग के संकेत देकर भारतीयों को पुनः अपने विज्ञान पर गौरव करना सिखलाया। आज से १३४ वर्ष पूर्व इसी विषय को लेकर जर्मन के डॉ० जी० वाईज से उन्होंने पत्र-व्यवहार के द्वारा यह प्रयास किया कि भारतीय युवक जर्मन जाकर शिल्प-कला-कौशल की शिक्षा लें और वापिस भारत में आकर व्यवसायिक शिक्षा के विद्यालय (औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान) स्थापित कर, उन शिल्प कलाओं का अन्यों को प्रशिक्षण देकर देश में उनका विस्तार करें। उन्होंने अपने ग्रन्थों में इस पर भी बल दिया था कि देश में शैक्षणिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के साथ व्यावसायिक शिक्षा का भी पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिए।

(१२) **उत्पादन करने का सबको अधिकार नहीं**-महर्षि दयानन्द की उत्पादन विषयक मान्यता की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वे आज

की भाँति सबको उत्पादन करने का अधिकार नहीं देते। अपितु राज्य द्वारा निर्धारित अर्थात् वैश्य वर्णस्थ व्यक्तियों को ही उत्पादन करने कराने का प्रमुख अधिकारी स्वीकार करते हैं और अन्य वर्ण ब्राह्मण आदि उत्पादन करने-कराने में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोगी रहेंगे। साथ ही उनका उत्पादन कृत्य भी राज्य द्वारा नियोजित अर्थव्यवस्था (आर्थिक नियोजन) के अन्तर्गत होगा।

(१३) **विनिमय**-महर्षि दयानन्द जहाँ उत्पादन करने का कर्त्तव्य वैश्यवर्ण का निर्धारित करते हैं वहाँ वे विनिमय-व्यापार इत्यादि के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का आदान-प्रदान (वितरण) करना भी वैश्य वर्ण का कर्त्तव्य दर्शाते हैं। अर्थात् जो उत्पादन, विनिमय-व्यापार-व्यवसाय का कार्य करते हैं वे महर्षि की दृष्टि में वैश्य हैं।

महर्षि दयानन्द के विनिमय सिद्धान्त वेद और मनुस्मृति को आधार बनाकर चलते हैं। राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय व्यापार और उनके साधनों-गणित, यातायात के साधन, नाप, माप, तौल, मुद्रा, बैंक (अधिकोष) गोदाम-व्यवस्था इत्यादि को उन्होंने वेदभाष्य से प्रमाणित करते हुए परतन्त्र भारत के लोगों को यह प्रेरणा दी थी कि राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि के लिये अन्तरराष्ट्रीय व्यापार करना अनिवार्य है। उत्पादन की भाँति वे विनिमय-व्यापार और उनके साधनों पर भी राज्य का नियन्त्रण मानते हैं और राज्य से यह अपेक्षा रखते हैं कि वह व्यापारियों को व्यापार करने की सब प्रकार की सुविधा प्रदान करें।

(१४) **वितरण**-महर्षि दयानन्द की दृष्टि में वितरण-व्यवस्था की संरचना करना और उसके अनुसार उत्पादित वस्तु या धन का वितरण करना राज्य का कर्त्तव्य कर्म है। उनकी मान्यता थी कि बिना समुचित दण्ड-व्यवस्था के समुचित और यथायोग्य वितरण नहीं होता। उत्पादन के साधनों में वितरण के लिये-भूमि के लिये लगान, श्रम के लिये मजदूरी या वेतन, पूँजी के लिये ब्याज और साहसी के लिये लाभ आदि के उनके विचार क्रान्तिकारी हैं।

(१५) **महर्षि दयानन्द प्रतिपादित समाज और राज्य**-महर्षि दयानन्द प्रतिपादित समाज और राज्य की संरचना के वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, शुक्रनीति इत्यादि आधारभूत ग्रन्थ हैं। व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं अपितु परस्पर तन्त्र, आर्य और अनार्य, गुण, कर्म और स्वभाव पर आधारित वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, संस्कार, पुरुषार्थ चतुष्टय और समाज का दर्शन आदि बिन्दुओं से उनके समाज का स्वरूप और अराजक स्थिति से राज्य की उत्पत्ति, राजा का पद वंश परम्परागत न होकर प्रजातन्त्र प्रणाली से निर्वाचित, तीन सभाएँ (राजार्य, धर्मार्य और विद्यार्यसभा) सभा-समिति

की पृथक् सत्ता, स्थानीय शासन, न्याय और यथायोग्य दण्ड-व्यवस्था, स्त्री भी न्यायाधीश होती है, लघु मन्त्रीमण्डल, सप्तांग और सावयव राज्य, धर्म सापेक्षता, विश्वसत्ता का अस्तित्व इत्यादि बिन्दुओं से उनके राज्य का स्वरूप प्रकट होता है।

(१६) **सम्पत्ति का स्वामित्व**-यों तो प्रत्येक काल-खण्ड में सम्पत्ति का स्वामित्व बदलता रहता है। वैदिक काल में सम्पत्ति पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व रहा है और राजा उसका संरक्षक और व्यवस्थापक मात्र था। पश्चात् धीरे-धीरे समाज में परिवर्तन के साथ-साथ इस मान्यता में भी परिवर्तन हुआ और मध्यकाल में राजा अथवा शासक ही अपने को राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी मानने लग गये। पश्चात् सम्पत्ति के दो भाग हो गये और बहुशः भाग का स्वामी राज्य और कुछ एक भाग के स्वामी वैयक्तिक रूप से पृथक्-पृथक् प्रजास्थ पुरुष होने लग गए। वर्तमान में यही व्यवस्था सर्वत्र प्रचलित हो रही है।

महर्षि दयानन्द मूलरूप से सम्पत्ति पर पृथक्-पृथक् किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं मानते थे। अपितु उनकी दृष्टि में सम्पत्ति सबके साँझे की अर्थात् सम्पत्ति अथवा उत्पादन के साधनों पर सामूहिक रूप से सबका अधिकार है। उनके ग्रन्थों में इस विचार का मूल यह है कि वे शास्त्रीय प्रमाणों से वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित मानते हैं। अतः इस वर्ण-व्यवस्था की मान्यता में किसी भी स्थिति में सम्पत्ति का वैयक्तिक स्वामित्व सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि वैयक्तिक स्वामित्व का मूलाधार जन्मना अधिकार व्यवस्था है और महर्षि इसके घोर विरोधी थे। फिर भी उनकी व्यवस्था में राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह देश, काल और परिस्थिति को देखकर सम्पत्ति के स्वामित्व में परिवर्तन कर सकता है।

संसार परिवर्तनशील है। आज व्यक्ति की पहिचान प्रायः उसके जन्म से होती है तो इस स्थिति में सम्पत्ति का सामूहिक स्वामित्व कैसे प्रासंगिक हो सकता है। परन्तु हमारे समक्ष सदैव यही आदर्श उपस्थित रहना चाहिए कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु सबके साँझे की है और राज्य उसका संरक्षक और व्यवस्थापक मात्र है।

(१७) **ममत्व सिद्धान्त और वैयक्तिक स्वामित्व**-प्रत्येक मनुष्य का अपना कुछ न कुछ हित होता है। वह उसी के लिये त्याग और बलिदान करता है जिस पर अपना अधिकार समझता है। अपना घर, अपना देश, अपनी भाषा, अपना पुत्र, अपना खेत, अपनी सम्पत्ति इत्यादि के प्रति व्यक्ति में एक स्वाभाविक ममत्व होता है। इस स्वाभाविक ममत्व के सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए वर्णाश्रम-व्यवस्था में व्यक्ति को जो

वर्णानुसार कर्म करने के साधन राज्य की ओर से मिले हैं उन पर व्यक्ति गृहस्थकाल (२५-५० वर्ष) तक स्वामी रह सकता है और सेवानिवृत्त (वानप्रस्थ काल) होते समय उन साधनों को अपने योग्य पुत्रों को दायभाग में भी दे सकता है। यदि सभी पुत्र अयोग्य हुए तो यह व्यवस्था राज्य करेगा कि साधन किसे दिये जाएँ।

(१८) **उत्तराधिकार**-महर्षि दयानन्द ने उपभोग के साधनों (घर, बर्तन, आभूषण, पिता के पारिश्रमिक से बचे हुए धन आदि) पर जन्म से पुत्र का अधिकार स्वीकार किया है, परन्तु उत्पादन के साधनों (खेत, खदान, कारखाना आदि) पर योग्यता, अयोग्यता का आधार स्वीकार किया है। इस प्रकार महर्षि दयानन्द के दृष्टिकोण से जीवित रहने के भौतिक साधनों पर योग्य अयोग्य सबका अधिकार है।

(१९) **राज्य का बजट**-महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से राज्य की आय के प्रमुख तीन साधन स्पष्ट होते हैं, यथा-(१) कर (टैक्स), (२) शुल्क एवं (३) आर्थिक दण्ड। युद्ध में जीता गया धन भी आय का साधन माना गया है, परन्तु उन्होंने उस पर सैनिकों का भी हिस्सा स्वीकार किया है।

महर्षि दयानन्द ने उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह को लिखे पत्र में राज्य के बजट की संरचना के लिये सूत्रात्मक निर्देश देते हुए प्रतिशत में राष्ट्रीय आय का राष्ट्र और प्रजाहित में जो विनियोजन दर्शाया है। उससे पता लगता है कि उन्हें राज्य के वित्तीय प्रबन्ध का पूर्ण ज्ञान था और वे चाहते थे कि देशी राजा अपने राज्य में कल्याणकारी अर्थव्यवस्था की पुनर्स्थापना करे। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार के अकल्याणकारी और अनुचित करों का विरोध करते हुए सम्पूर्ण ब्रिटिशकालीन अकल्याणकारी अर्थव्यवस्था की कटु आलोचना की थी।

(२०) **धर्मयुक्त धन**-चूँकि धन एक भौतिक वस्तु है जो सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है। फिर सारी सुविधाएँ भी उसी से प्राप्त होती हैं। इसलिए उसके प्रति सबका आकर्षण होना स्वाभाविक है। परन्तु धन या अर्थ व्यक्तियों को अपना दास न बना ले, इसलिए दयानन्द प्रतिपादित वैदिक समाज-व्यवस्था में पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धान्त की परिकल्पना कर धर्म को अर्थ से प्रथम स्थान पर रखा गया ताकि धर्म के द्वारा अर्थ के अच्छे बुरे होने की पहिचान होती रहे और व्यक्ति धर्म पूर्वक अर्थ प्राप्त करता रहे। इस प्रकार व्यक्ति का आर्थिक (भौतिक) आकर्षण मर्यादित रहता है।

(२१) **तीन प्रकार का धन**-स्मृतियों में जो तीन प्रकार (सफेद, भूरा और काला) का धन माना गया है और जिसका प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के बारहवें अध्याय में वर्णन हुआ है। उनको पहिचानने की शक्ति धर्म ही

देता है। धर्म के द्वारा प्राप्त किया गया धन (अर्थ) लोक, परलोक की सिद्धि प्राप्त कराता है।

महर्षि धर्म को बहुवचन में नहीं मानते थे अर्थात् उनके मत में धर्म संख्या में एक ही होता है अनेक नहीं। यदि अनेक होता है तो एक दूसरे के विरुद्ध होगा और विरुद्ध हुआ तो धर्म नहीं कहा जा सकता तथा अविरुद्ध हुआ तो पृथक्-पृथक् धर्म होना व्यर्थ है। (सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास, पृ० ३६३) अतः सब धर्म समान कहना अनुचित है। धर्म सबका एक होता है। वह है वैदिक धर्म। जिसे मानव धर्म भी कहा जा सकता है। जिसका चोटी रखना, यज्ञोपवीत पहनना, दाढ़ी रखना, केश कंघा और कृपाण आदि रखना, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा और यज्ञशाला आदि का निर्माण करना, भूखे रहना और उन्हें व्रत कहना, तिलक छापा लगाना, नदी विशेष में स्नान करना और तीर्थ मानना, किसी स्थान विशेष में मरना इत्यादि को धर्म का अंग मानने से कोई सम्बन्ध नहीं है न इन्हें मानने की कोई शर्त है अपितु धर्म के लक्षणों और परिभाषाओं को धारण करना मुख्य शर्त है।

महर्षि दयानन्द ऐसे ही धर्म का राज्य-व्यवस्था और अर्थव्यवस्था के साथ संयुक्त करना चाहते थे और ऐसे ही धर्म का मनुष्य मात्र में प्रचार करना चाहते थे। जिसको एक बार नास्तिक-आस्तिक भी धारण कर सके। ऐसे धर्म को धारण करने वाला मनुष्य ही सच्चा मनुष्य कहला सकता है। स्वामीजी लिखा है-मनुष्य वही है जो मननशील होकर स्वात्मवत् दूसरों के सुख-दुःख, हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। (स्वमन्तव्यामन्तव्य, सत्यार्थप्रकाश, पृ० ५६१)

(२२) **महर्षि दयानन्द के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता**- वर्तमान समय में राष्ट्र में वस्तुतः एक प्रकार की आर्थिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। राष्ट्रीय सम्पत्ति का अधिकांश भाग कुछ ही व्यक्तियों अथवा परिवारों में केन्द्रित हो गया है। व्यक्तियों का एक सीमित समूह असीमित सम्पत्ति का अधिकारी बनकर उसका असीमित उपभोग कर रहा है वहीं दूसरी ओर जनसंख्या का अधिकांश भाग रोटी, कपड़ा और मकान आदि जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हो रहा है।

आज सम्पूर्ण विश्व में सर्वत्र धर्म विहीन अर्थ-व्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही है जिसमें अर्थ-प्राप्ति के साधनों की पवित्रता का कोई स्थान नहीं है।

कुछ व्यक्ति अत्यधिक सुविधा भोगी और स्वार्थी होने के कारण अपनी ही आर्थिक उन्नति का ध्यान रखते हैं इसलिये समाज में व्यक्ति-व्यक्ति की आर्थिक उन्नति के बीच एक बहुत बड़ा अन्तर आ गया है। संसार के अनेक देशों में इसका उपचार रक्तक्रान्तियों से हुआ, हो रहा है और भविष्य में कभी भी हो सकता है। दयानन्द प्रतिपादित वर्णाश्रम आधारित धर्मयुक्त अर्थव्यवस्था और उनका आर्थिक नियोजन देशकाल की अवस्था के अनुसार क्रियान्वित करें तो छीनाझपटी, रक्तपात, रक्तक्रान्तियों और केवल भौतिकवाद पर आधारित अनेक राजनैतिक अर्थशास्त्रीय वादों का आश्रय लिये बिना ही देश में न्यायपूर्ण आर्थिक समानता उत्पन्न की जा सकती है और राष्ट्र को खुशहाल बनाया जा सकता है। उसी प्रकार दयानन्द प्रतिपादित सामाजिक और धार्मिक सिद्धान्त भी शोषण और विषमता रहित सामाजिक संरचना के लिये प्रासंगिक हो सकते हैं।

[डॉ० रामकृष्ण आर्य वानप्रस्थ लेकर 'वरुणमुनि वानप्रस्थ' के नाम से जाने जाते थे। यह अत्यन्त ही दुःख का विषय है कि १४ अक्टूबर २०१५ ई० को उनका देहान्त हो गया। वे अतीव सरल, सौम्य और कर्मठ व्यक्तित्व के धनी थे। सामान्य परिवार में जन्म और सामान्य शिक्षा प्राप्त करने पर भी जब वे आर्यसमाज के सम्पर्क में आये, तब उन्हें स्वाध्याय के साथ-साथ ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की भी धुन सवार हुई, उन्होंने एम० ए० तक की पढ़ाई नौकरी करते हुए पूरी की तथा प्रो० भवानीलाल भारतीय, अध्यक्ष, दयानन्द पीठ-पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ के निर्देशन में पी-एच०डी० की उपाधि भी ससम्मान प्राप्त की। उनके ही पुरुषार्थ से कोटा में दो बार 'आर्य लेखक सम्मेलन' का सफल आयोजन सम्पन्न हुआ। दोनों बार के सम्मेलनों में भारी संख्या में आर्य लेखक सम्मिलित हुए। प्रथम आर्य लेखक सम्मेलन में डॉ० वेद प्रताप वैदिक, डॉ० भारतीय तथा डॉ० प्रशान्त कुमार वेदालङ्कार के ऐतिहासिक महत्त्व के भाषण हुये। रामकृष्णजी ने विभिन्न विषयों पर बहुत ही उपयोगी सामयिक ट्रैक्ट भी लिखे। आर्य जगत् की वर्त्तमान स्थिति से वे बहुत ही दुःखी और चिन्तित भी रहते थे। मेरा उनसे व्यवहार अत्यन्त ही प्रेमपूर्ण तथा आत्मीय था। लेखनी के धनी, आर्य मनीषी तथा आर्यसमाज के प्रहरी और ऋषि दयानन्द के प्रति समर्पित वरुणमुनिजी को हमारी अश्रुपूरित श्रद्धाञ्जलि। उनके सामयिक ट्रैक्टों तथा महत्त्वपूर्ण लेखों को यदि उनके पारिवारिक जन तथा उनके मित्र पं० वेदप्रिय शास्त्री जी हमें उपलब्ध करा दें तो उनका संग्रह श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास प्रकाशित करने का प्रयास करेगा—डॉ० ज्वलन्त शास्त्री-सम्पादक]

ऋषि दयानन्द का जोधपुर-प्रवास तथा बलिदान-दिवस

—प्रो० ज्वलन्त कुमार शास्त्री

ऋषि दयानन्द ९ मार्च १८८३ ई० को राजस्थान के नगर शाहपुरा पहुँचें। उनके निवास का प्रबन्ध शाहपुरा-नरेश के राजकीय-उद्यान में किया गया। सायंकाल महाराज मन्त्री-परिषद् सहित स्वामी जी की सेवा में पहुँचे। परस्पर के वार्त्तालाप के बाद सायंकाल ६ बजे से ९ बजे तक महाराजा स्वामीजी के पास पहुँचते थे, जिसमें १ एक घण्टे तक धर्म विषय पर चर्चा होती थी और २ दो घण्टे तक उनका अध्ययन चलता था। सायंकाल के इस कार्यक्रम के तय होने से पूर्व महाराजा का स्वामीजी से ५ पाँच दिन तक परस्पर वार्त्तालाप हुआ था। यहाँ महाराजा ने स्वामीजी से मनुस्मृति, पातञ्जल, योगशास्त्र तथा वैशेषिक दर्शन का कुछ अंश पढ़ा, कभी-कभी वे प्रातःकाल भी स्वामीजी के साथ भ्रमणार्थ चले जाते थे और एकान्त में उनसे प्राणायाम सीखा करते थे। स्वामीजी मध्याह्न में भोजन के पश्चात् गर्मियों में १६ मिनट और शीतकाल में १४ मिनट निद्रा लिया करते थे। लेटने के कुछ क्षण बाद ही वे प्रगाढ़ निद्रा में लीन हो जाते थे और १६ मिनट पूर्ण होते ही अंगड़ाई लेकर उठ बैठते थे। खाने के मामले स्वामीजी कच्ची-पक्की, सखरी-निखरी रसोई के चक्कर में नहीं पड़ते थे। यहाँ ही उन्हें महाराजा जसवन्तसिंहजी जोधपुराधीश का निमन्त्रण आया, महाराज प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह उदयपुर में ही स्वामीजी से जोधपुर पधारने की प्रार्थना कर चुके थे, अतः स्वामीजी ने जोधपुर जाने का विचार किया।

शाहपुराधीश नहीं चाहते थे कि स्वामीजी जोधपुर जायें, क्योंकि वे जोधपुराधीश और स्वामीजी के स्वाभाव को भली-भाँति जानते थे। जोधपुराधीश एक वेश्या नन्हीं भगतन पर बुरी तरह आसक्त थे और स्वामीजी इस पापकर्म को जानकर उसे अनदेखा-अनसुना नहीं कर सकते थे। अतः शाहपुरा से जाते समय अपना कर्त्तव्य समझते हुए महाराजा ने स्वामीजी से नम्र निवेदन किया कि आप वहाँ जाकर वेश्याओं का अधिक खण्डन न करें। इस चेतावनी का स्वामीजी पर विपरीत ही परिणाम हुआ, उन्होंने उत्तर दिया-"मैं बड़े-बड़े कंटीले वृक्षों को नहुरने से नहीं काटा करता। उनके लिये तो अति तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होगी।" शाहपुराधीश का स्वागत सम्मान स्वीकार करने के बाद स्वामीजी अजमेर पहुँचे जहाँ उन्होंने सेठ फतहमल की कोठी में निवास किया। अजमेर के लोग भी भली-भाँति जानते थे कि वह (जोधपुर) मरुभूमि न केवल प्राकृतिक दृष्टि से अपितु धार्मिक दृष्टि से ऊसर है, अतः उनका प्रयत्न यह था स्वामीजी वहाँ न जायें। कुछ भक्तों ने स्वामीजी से इतना तक कहा-"भगवन्! वह मूल राक्षस का देश है, वहाँ न जाइये" पर दृढ़

निश्चयी दयानन्द के विचार और होनी के प्रसार को कौन टाल सका है। सेवाव्रती दयानन्द ने केवल इतना ही कहा–"यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियाँ बनाकर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश करूँगा।" ३१ मई की प्रातःकाल स्वामीजी जोधपुर पहुँचे, स्वामीजी के जोधपुर पहुँचने के १७ दिन बाद महाराजा जसवन्तसिंह उनके दर्शनों को उपस्थित हुए तथा उनको नमस्कार पूर्वक १००) रुपये तथा ५ मोहरें भेंट स्वरूप दीं। शिष्टतावश ये स्वामीजी के समक्ष कुर्सी पर न बैठकर फर्श पर ही बैठने लगे, स्वामीजी ने उनका हाथ पकड़ कर कुर्सी पर बिठाया। महाराजा के अनुरोध करने पर स्वामीजी ने उपदेश गंगा प्रवाहित करनी प्रारम्भ कर दी। राजनीति के अनर्घ रत्नों के साथ उन्होंने जयचन्द के दृष्टान्त से प्रारम्भ करने, स्वदेश द्रोह और फूट के दोष को दिखाते हुए ऐक्य और स्वदेश प्रेम के गुण बतलाये। लगभग तीन घण्टे तक स्वामीजी उन्हें उपदेश करते रहे, महाराजा ने उससे पूर्व ऐसा सारगर्भित और उपयोगी व्याख्यान कभी न सुना था, उन्होंने अनुरोध किया कि वहाँ की जनता को भी अपने पीयूषमय उपदेश से अनुगृहीत करें।

अगले दिन से ही शाम के ४ बजे तक फैजुल्ला खाँ की कोठी के सहन में स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। धीरे-धीरे श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी, उन्होंने जीवन में ऐसे निर्भीक और तर्कपूर्ण वचन कभी सुने ही नहीं थे। जनता की तथाकथित अन्ध-आस्थायें अनन्त में विलीन होने लगी। इन व्याख्यानों में स्वामीजी ने क्षत्रियों के चरित्र संशोधन तथा गोरक्षा पर अत्यधिक बल दिया। स्वामीजी की निर्भीकता देखकर रावराजा तेजसिंह कुछ आशंकित हो उठे, उन्होंने स्वामीजी को परामर्श दिया अथवा अनुरोध किया कि वे महाराजा के चरित्र के विषय में कुछ न कहें। स्वामीजी को ऐसा परामर्श देना मानो सोते सिंह को जगाना था। उन्होंने भरी सभा में वेश्यागमन के दोषों को दिखाने और वेश्यागामियों को फटकार करने में तनिक भी संकोच नहीं किया और इस सम्बन्ध में वही शब्द कहे जो वह सदा कहते थे अर्थात् क्षत्रिय सिंह है और वेश्या कुतिया है।

स्वामीजी ने जब जोधपुर में प्रवेश किया था, वह रियासत विचित्र स्थिति में थी 'It was virtually governed by Muhammedans, one Faijullah Khan was the Prime Minister.' अर्थात् वस्तुतः इसका प्रशासन मुसलमानों के हाथ में था और फैजुल्ला खाँ इसके प्रधानमन्त्री थे।

स्वामीजी जोफुर में चार माह रहे। इस बीच महाराजा तीन बार स्वामीजी के पास गये और तीन बार स्वामीजी महाराजा के पास गये। स्वामीजी ने एक पत्र सर प्रतापसिंह को लिखा जिसमें उन्होंने व्यक्त किया–"मुझको इस बात का शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश

आलस्य आदि में वर्तमान, आप और बाबा रोगयुक्त शरीर वाले हैं..... मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझ से सुनकर सुधार लेवें, जिससे मारवाड़ तो क्या अपने आर्यावर्त्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें।''

जोधपुर में स्वामीजी प्रातःकाल चार बजे उठते थे, कुल्ला दातुन करके थोड़ी-सी सौंफ फाँककर दो-चार घूँट जल पी लेते थे और ४-५ करवट लेते और ५ बजे भ्रमण करने चले जाते। लौटते समय उनकी गति इतनी तीव्र होती थी कि वे पसीने-पसीने हो जाते थे। भ्रमण को जाते समय हाथ में एक मोटा सोटा रखते थे। भोजन केवल एक ही बार करते थे, रात्रि में सोने के पहले दुग्धपान किया करते थे। स्वामीजी को आम बहुत प्रिय था, आम खाते समय जो भी उनके पास होता उसे भी आम खिलाते और तदुपरान्त दुग्ध पिलाते। कभी-कभी अमरस और दही का श्रीखण्ड भी बनवाते थे। एक बार स्वामीजी के विश्राम करते समय गलती से ४-५ खवासिनें उनके कमरे में आ गई, उन्हें देखकर सहसा बड़े जोर से चिल्लाये। पुराने पहरेदारों को बदलवा दिया और नयों को आदेश दिया कि किसी स्त्री वा लड़की को बंगले के पास न आने दो। एक बार प्रातःकाल स्वामीजी ने एक पहलवान को देखा जो प्रतिदिन अपने नहाने के लिए रहट चलाकर हौज भरा करता था, उसे अपनी शक्ति पर बड़ा गर्व था। एक दिन स्वामीजी ने रहट चलाकर हौज भर दिया और वायु सेवनार्थ आगे चले गये। पहलवान के पूछने पर उन्होंने बताया कि अभी तो उनका व्यायाम पूरा भी नहीं हुआ था, अतः उन्हें टहलने के लिये आगे जाना पड़ा। पहलवान यह सुनकर हक्का-बक्का रह गया।

षड्यन्त्र का श्रीगणेश-व्याख्यान तथा महल में वेश्या को कुतिया कही जाने वाली चर्चा नन्हीं भगतन ने भी सुनी। उसने अपनी शक्ति एवं अस्तित्व का परिचय देने के लिये एक योजना बनाई, अपने कुछ विश्वस्त आदमियों को इसमें योग देने के लिये सहमत कर लिया। षड्यन्त्र के प्रथम चरण के रूप में २५ या २६ की रात्रि को स्वामीजी का भृत्य कल्लू कहार ६००-७०० रुपये का माल (मोहर आदि) लेकर खिड़की की राह से भाग गया, पहरे वालों ने भी अपने कार्य में प्रमाद किया। राजाज्ञा हुई कि उसे पाताल से भी ढूँढ निकालना चाहिये, पर परिणाम कुछ नहीं निकला। ''ऐसी बातें देखकर महाराज (स्वामी) की जोधपुरवास से ग्लानि हो गई तथा जोधपुर के मनुष्यों के ऊपर से उनका विश्वास उठ गया और उन्होंने वहाँ से चलने का संकल्प कर लिया।'' पर किसे मालूम था कि उनकी यह यात्रा महायात्रा होगी।

२७ सितम्बर को सामान्य प्रतिश्याय होने के कारण स्वामीजी अस्वस्थ थे। वही स्थिति २८ को भी रही, २९ सितम्बर की रात्रि को यथा-नियम

उन्होंने दुग्ध पिया। यह दूध उन्हें शाहपुरा से लाये हुए महाराज धौड़ मिश्र रसोइये ने पिलाया। जीवनी लेखकों का मत है कि इस दूध में "बारीक काँच का टुकड़ा मिला था।" थोड़ी देर बाद उदरशूल के कारण उनकी निद्रा भंग हो गई। उनका जी मिचलाने लगा और तीन बार वमन हुई। विष प्रयोग का सन्देह होने पर स्वामीजी ने स्वयं ही पानी पीकर वमन किया। वमन के बाद भी जी मिचलाना कम न हुआ, उन्होंने अग्निकुण्ड में धूप डलवाकर सुगन्ध फैला दी। वमन करने में उन्हें बहुत कष्ट होता था, इससे उनकी अंतड़ियों और यकृत पर सूजन आ गई। स्वामीजी ने रावराजा तेजसिंह को बुलवाकर निवेदन किया कि उनकी चिकित्सार्थ किसी हिन्दू चिकित्सक को बुलाया जाय। कारागार के चिकित्सक डॉ० सूरजमल ने आकर नाड़ी देखकर बुखार उतारने के लिये Diaphoretic Mixture दिया। महाराजा प्रतापसिंह को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने रावराजा तेजसिंह के साथ डॉ० अलीमर्दान खाँ को चिकित्सा के लिये भेजा। "वह एक तीसरे दर्जे के हास्पिटल का असिस्टेण्ट था परन्तु पहले दरजे का खुशामदी और कपटी था।" डॉ० अलीमर्दान खाँ ने स्वामीजी के पेट पर पट्टी बंधवाई और Salvation Pills देने को कहा। गोलियाँ आने पर स्वामीजी ने डॉ० सूरजमल से पूछा कि वे उन्हें खायें या नहीं। डॉ० सूरजमल ने कहा कि खा सकते हैं। बाद में उक्त डॉक्टर ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि मेरा अन्तःकरण उस औषधि को देने का नहीं करता था, पर वे दूसरे डॉक्टर की चिकित्सा में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे।

रोग की वृद्धि–२ अक्टूबर को अलीमर्दान खाँ ने पेट साफ करने के लिये जुलाब देने का प्रस्ताव किया। स्वामीजी ने पूछा कि कितने दस्त आवेंगे तो डॉक्टर ने उत्तर दिया–६ या ७। उसने सूरजमल से फि कहा कि स्वामीजी हृष्ट-पुष्ट हैं, इन्हें जुलाब भी चौगुनी मात्रा में देना चाहिये। सूरजमल ने चाहते हुए भी फिर प्रतिरोध नहीं किया। ४ तारीख की प्रातःकाल स्वामीजी को लगभग ४० दस्त आये। डॉ० अलीमर्दान खाँ से स्वामीजी ने कहा कि आप कहते थे ६-७ दस्त आयेंगे, इस पर डॉक्टर चुप हो गया। सायंकाल तक दस्त आने पर मूर्च्छा आने लगी, जुलाब Compound Jalap powder का था, उसकी मात्रा भी दुगुनी कर दी गई थी। किसी तरह दस्त बन्द न होने पर अलीमर्दान खाँ ने Bismuth और Doner's astringent Pills दीं। स्वामीजी के रुग्ण होने का प्रथम समाचार १२ तारीख को 'राजपूताना गजट' में प्रकाशित हुआ।

क्या स्वामीजी को विष दिया गया?–पण्डित लेखराम ने इस विषय में जो खोज की, उससे उन्होंने चार परिणाम निकाले–

(क) स्वामीजी की मृत्यु दूध के साथ दिये विष से हुई।

(ख) विष की प्रेरणा नन्हीं भगतन के षड्यन्त्र से हुई।

(ग) जोधपुर में उनका इलाज ठीक प्रकार नहीं हुआ।

(घ) डॉ० अलीमर्दान खां के इलाज से रोग वृद्धि हुई।

डॉ० लछमनदास स्थानान्तरण होने के कारण अजमेर जा रहे थे, पर उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे आबू ही लौटकर स्वामीजी की सेवा करेंगे चाहे नौकरी रहे या चली जाये। आबू पहुँचने से पहले स्वामीजी को दिन-रात ४० दस्त आते थे, वहाँ जाकर रात्रि में केवल तीन या चार ही रह गये। स्वामीजी को दूध में अरारोट दिया जाने लगा और उनकी दशा में सुधार होने लगा। डॉ० लछमनदास ने अपने ऑफिसर से स्वामीजी की सेवा करने के लिये छुट्टी माँगी पर उन्हें वह न दी गई, उन्होंने त्यागपत्र भी लिख दिया जिसे एक बार तो स्वामीजी ने ही फाड़ डाला, दुबारा लिखने पर उसे भी स्वीकार नहीं किया गया। उनके ऑफिसर डॉ० स्पेन्सर ने उन्हें अजमेर जाने के लिये विवश किया। डॉ० लछमनदास यही कहकर चले गये कि उन्हें यदि अजमेर ले आया जाये तो वे स्वामीजी की सेवा कर सकेंगे। डॉ० स्पेन्सर ने चिकित्सा का भार संभाला पर वह प्रारम्भ से ही प्रतिकूल पड़ा। यह भी सम्भव है कि उन्हें स्वामीजी की बिमारी समझ में न आई हो और यह भी सम्भव है कि उन्हें भी षड्यन्त्र में सम्मिलित होने का आदेश मिला हो।

२९ अक्टूबर को लाहौर से पं० गुरुदत्त और लाला जीवनदास आ गये और उदयपुर से पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या भी आ गये। डॉ० लछमनदास की सेवा से एक बार पुनः कुछ स्वास्थ्य सुधार हुआ। कुछ समय बाद स्वामीजी ने कह दिया कि अब उनका अन्त समय आ गया है अतः सब उपचार छोड़ दिये जायें।

जीवन मुक्ति–लाला जीवनदास के यह पूछने पर कि आप कहाँ हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया 'ईश्वरेच्छा' में। आत्मानन्द के सिर पर हाथ रखकर उन्हें आनन्द से रहने का स्वामीजी ने आशीर्वाद दिया। घोरतम कष्ट सहन करते हुए भी उनके मुख से एक बार भी हाय या अन्य कोई कष्टसूचक शब्द नहीं निकला, उन्हें तेज और अन्धकार का भाव दिखाई दे रहा था।...........सभी आगन्तुक व्यक्तियों को स्वामीजी ने अपने पीछे खड़ा करवा लिया तथा सभी द्वारों और गवाक्षों को खुलवा लिया। वार और पक्ष पूछने के बाद छत और दीवारों की ओर दृष्टि करके कई वेद-मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरोपासना की ओर भाषा में ईश्वर का गुण कीर्तन किया, गायत्री मन्त्र का पाठ कर समाधिस्थ रहकर ही आँखें खोल दी और कहने लगे–"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, आहा!!! तैने अच्छी लीला की।" इतना कहकर वे लेट गये, स्वयं एक करवट ली और एक प्रकार से श्वास रोककर उसे एकदम सदा के लिये बाहर निकाल दिया। इस प्रकार इस

दैवीय विभूति की पार्थिव लीला समाप्त हुई, प्रभु का भक्त प्रभु के समीप ही पहुँच गया।

३१ तारीख को केले के पत्ते और पुष्पादि से उनकी अर्थी सजाई गई, वेद-मन्त्रों से आकाश को गुञ्जायमान करता हुआ और नयनों में गंगा-जमुना प्रवाहित करता हुआ, समस्त प्रदेशों से आया हुआ भक्त समूह जुलूस के रूप में नगर के गली-कूचों में चल दिया। उनके स्वीकार पत्र के अनुसार सामग्री जुटाई गई और संस्कारविधि के अनुसार उनका अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया गया।

कुछ सम्मतियाँ–स्वामीजी की मृत्यु का समाचार दावाग्नि की तरह सारे देश में फैल गया, सभी समाचार पत्रों ने इस पर टिप्पणी की। उस समय तार और पत्रों की इतनी बहुतायत थी कि डाक तार विभाग वाले घबरा गये। 'देश हितैषी' पत्र ने लिखा, "स्वामीजी की मृत्यु पर शोक प्रकाशित पत्र और तार इतने आये कि यदि मैं उन्हीं को मुद्रित करता रहूँ तो मेरे समाचार पत्र के लिये एक साल से भी अधिक होंगे।" 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक-बालकृष्ण भट्ट ने लिखा,......"आर्यसमाज की बाँह टूट गई। सरस्वती का भण्डार लूट गया। यह इन्हीं का काम था कि धर्म पुस्तक वेद का मनुष्य मात्र के लिये उपदेश किया, आज वह वेद का सूर्य सदैव लुप्त हो गया।" 'बंगाली कलकत्ता' ने लिखा, "वह पूर्ण योगी थे और जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उनमें आया वैसा कदाचित् ही किसी अन्य में देखने में आये।" प्रिन्सिपल डॉ० स्कॉट ने कहा, "वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान्, साहित्य का पुतला, वेदों के महत्त्व को समझने वाला अत्यन्त प्रबल नैयायिक यदि भारतवर्ष में हुआ तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती था।" सर सैयद अहमद खाँ ने कहा-"वह इतने विद्वान् और अच्छे आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिये सम्मान पात्र थे। उनके समान व्यक्ति समूचे भारत में कोई नहीं मिल सकता।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें आधुनिक भारत का महान् मार्गदर्शक माना है, सत्य के प्रति उनकी स्पष्ट दृष्टि और उनके साहस की सराहना की है, प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने उनके सम्बन्ध में कहा कि जब भी भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा, इस नंगे फकीर दयानन्द को उच्च स्थान दिया जायेगा, के० एम० मुंशी ने उनके चरित्र को महान् तथा उनके पाण्डित्य को अति विशाल बताया है। मैकडानल, कर्नन स्कॉट, मैडम ब्लैवट्सकी आदि विद्वानों ने उन्मुक्त कण्ठ से स्वामीजी के गुणों की प्रशंसा की है।

सम्पर्क-अध्यक्ष संस्कृत विभाग रणवीर रणञ्जय पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज,
अमेठी-२२७ ४०५ (उ०प्र०)
चलभाष : ०९४१५१८५५२१

आचार्य शंकर और उनका अद्वैतवाद

–पं० श्री रामचन्द्र आर्य

सृष्टि के आदि से लेकर आज से लगभग तीन सहस्त्र वर्षों पूर्व तक व्यक्ति आधारित किसी धर्म का अस्तित्व नहीं था। आप्त पुरुष लोकोपकार की दृष्टि से धर्मोपदेश करते थे। गृहस्थ लोग भी आप्त सत्पुरुष का सत्कार करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। धर्म हमारे जीवन की पद्धति का नाम था, जिसकी रक्षा एवं वृद्धि इन अतिथि आप्तों द्वारा होती थी। इसलिए अतिथि सत्कार को महायज्ञ अर्थात् श्रेष्ठ कर्मों में स्थान प्राप्त था। धर्म और नीति में कोई भेद न था। 'आचार: परमो धर्म:' तथा 'आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' तथा 'अयं निज: परो वेत्ति गणनालघुचेतसाम्' आदि धर्म की परिभाषाएँ थी। मानव संघ की प्रत्येक संस्था के प्रत्येक कार्य धर्म के अन्तर्गत आते थे। राजनीति, अर्थनीति, प्रजानीति, दण्डनीति आदि सभी धर्म के विभाग थे। प्रजा का धर्म वर्णाश्रम धर्म कहलाता था।

कालान्तर में एक व्यक्ति धर्मप्रवर्तक हुआ। इसका नाम था गौतम बुद्ध। इसका धर्म सांगठनिक धर्म था। यह बौद्ध धर्म कहलाया। विश्व इतिहास में पहली बार था जब एक व्यक्ति धर्म का आधार बना, जिसमें धर्मात्मा होने के लिए एक मनुष्य की शरण लेना, एक संघ की शरण लेना एक अनिवार्यता थी। जो व्यक्ति संघ की शरण नहीं लेता, बुद्ध की शरण नहीं लेता वह धार्मिक नहीं हो सकता। जब व्यक्ति धर्म की धुरी बना तो वह पूज्य हो गया। उसके शरीर का एक-एक अंश पूज्य हो गया। उसकी हड्डी, दाँत यहाँ तक कि बाल पर बड़े-बड़े संघाराम स्थापित किये गये। मूर्तियाँ बनाई गईं, उनकी पूजा के लिये मन्दिर बनाए गए। इसके साथ अनेक धर्म प्रवर्तकों द्वारा धर्मों की स्थापना की गई। भगवान् महावीर, ईश पुत्र ईसा, हजरत मुहम्मद आदि इसके उदाहरण हैं। यह परम्परा आज भी यथावत् जारी है। अनेकों भगवान्, पैगम्बर आदि आज भी जन्म ले रहे हैं।

जिस समय बुद्ध एवं जैन धर्म राजधर्म के रूप में स्थापित हो चुके थे उस समय आज से लगभग ढ़ाई हजार वर्ष हुए, भारत के दक्षिणी प्रान्त में एक नक्षत्र का उदय हुआ। जिसने बौद्ध, जैन विशेषत: बुद्ध धर्म को जड़ से उखाड़ दिया। भविष्य का कोई भी दार्शनिक विद्वान् इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। मध्व, रामानुज, निम्बार्काचार्य आदि विद्वान् शांकर अद्वैत से सन्तुष्ट नहीं थे तथापि "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर:" शंकर की इस मान्यता से ऊपर नहीं उठ पाये। आज तक भले ही आचार्य शंकर का नाम प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदाय में बड़े आदर से लिया जाता है तथापि शंकर के मायावाद को व्यवहार में स्वीकार करने वाले विरले ही होंगे। वास्तव में यह मत बुद्धि-विलास के अतिरिक्त और कुछ

भी नहीं है। हमारी दृष्टि में आचार्य शंकर भी इस मत को जीवन भर अपने हृदय में स्थान नहीं दे पाए। चाहे वह कितना भी बड़ा सत्य अथवा वास्तविकता हो, यदि वह आरोपित है तो व्यक्ति के हृदय में कभी स्थान नहीं बना सकता। 'एकमेवाद्वितीयम्' 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, एकोऽहं बहु स्याम् नेह नानाति किंचन और तत्त्वमसि' आदि वाक्यों को प्रकरणों से अलग करके खेंचतान द्वारा शंकर अद्वैत परक व्याख्या करते हैं। यदि वह इस व्याख्या को हृदय से स्वीकार करते होते तो स्त्री और शूद्र के प्रति इतने क्रूर भाव प्रकट न करते। आखिर आचार्य को स्त्री और शूद्र में ब्रह्म के दर्शन क्यों नहीं हुए। वेदाध्ययन रूपी पुण्य कर्म करने वाले शूद्र के लिए उन्होंने इतने कठोर दण्ड का विधान कर दिया जैसा जघन्यतम अपराध करने वाले अपराधी दुष्टों के लिए भी नहीं किया गया होगा। मनीषा पञ्चक के अनुसार काशी में मार्ग पर चलते हुए एक भङ्गन से शंकर ने कहा–चल हट, एक तरफ हो जा। इस पर उस भङ्गन ने पलट कर कहा–अरे आचार्य अन्नमय शरीर से अन्नमय शरीर को दूर हटने को कह रहे हो या चेतन ब्रह्म को चेतन ब्रह्म से दूर हटने को कह रहे हो। यह दूर हट, दूर हट की रट किसके लिए लगा रहे हो। यह सुन कर आचार्य हतप्रभ रह गये। हमारी दृष्टि में आचार्य अत्यन्त मेधा सम्पन्न एक बालक मात्र थे। भूसे के ढेर पर बैठे भ्रान्तिवश आत्मदाह को तत्पर भट्ट कुमारिल का उन्होंने शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। वेद–वेदाङ्गों के उस धुरन्धर विद्वान् को अपना शिष्य बना कर धर्म रक्षा में सहयोग लेना चाहते थे, मार्गदर्शक बना कर नहीं, अन्यथा वह उनसे सहयोग की याचना करते। विद्या यदि ब्राह्मण की निधि है तो ब्राह्मण का भी कर्त्तव्य है कि वह उसे बढ़ाए। उचित पात्रों को विद्या–वारि से भर दे। जो ऐसा नहीं करता वह विद्या का चोर है। ऐसे गुरु(?) का द्रोही कोई गुरु–द्रोही नहीं होता। परन्तु जिसने जैन मत को लगभग निःशेष करके वेद की दुन्दुभि बजाई थी, ऐसे विद्वान् की प्राण रक्षा के लिये कुछ भी प्रयास नहीं किया। अस्तु! शंकर का अद्वैत दर्शन क्या कहता है इस पर विचार करते हैं–

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

यह किसी ग्रन्थ का वचन है किन्तु इससे शांकर मत भली प्रकार समझ आ जाता है। इसमें कहा है–१. ब्रह्म सत्य है, ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है। २. जगत् मिथ्या है। है नहीं पर वास्तव में भासता है। ३. ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं है।

जगत् सत्य नहीं है इसलिए शरीर भी सत्य नहीं है, उसमें स्थित ज्ञानेन्द्रियाँ भी सत्य नहीं हैं। मिथ्या ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान भी मिथ्या है। वास्तव में हमारे पास ज्ञान प्राप्ति का कोई साधन नहीं है। यह ज्ञानेन्द्रियाँ

ऐसी विचित्र हैं कि नित्यप्रति हमें धोखा दिया करती हैं। ज्वर में लड्डू कड़वा लगता है, वह दूसरे को मीठा लगता है। किसकी आँख की साक्षी को सत्य माना जाए। हम इन्हें ज्ञान का द्वार कहते हैं वह वास्तव में धोखेबाज है। सम्भव है आप जिसे श्वेत देख रहे हैं मैं उसे हरा देख रहा होऊँ। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन ढोंग है। जिसे आप सत्य कहते वह और जिसे आप असत्य कहते हैं वह भी असत्य है। जैसे कि मृगतृष्णा दूर से देखने पर जल प्रतीत होता है। या थोड़ी दूरी से समीप को देखकर चाँदी का भ्रम होता है। यदि हम इसकी मीमांसा करे तो पता चलेगा जल और रेत के रूप में कुछ गुण समान हैं और कुछ गुण अलग-अलग अथवा विशेष हैं। जब हम दूर से देखते हैं रेत के केवल उस रूप को देख पाते हैं जो जल से समानता रखता है। रेत के विशेष गुण की प्राप्ति नहीं होती। इसमें प्रमाण अर्थात् आँख का दोष नहीं है। आँख की शक्ति सीमित है। वह एक विशेष दूरी तक पदार्थ का ठीक-ठीक ज्ञान करा सकती है। इससे जल और रेत के अनेक गुणों का दूर से अलग-अलग ज्ञान न हो सका। जब निकट पहुँचे तो सत्य आपके सामने था। ऐसा ही ज्वर में लड्डू के कड़वे लगने की बात है। उस समय जिह्वा पर कड़वा रस चिपका हुआ था। लड्डू और जिह्वा के मध्य कड़वे रस की एक दीवार थी। आपने उस दीवार को चखा था, लड्डू को नहीं। यदि इन्द्रियाँ धोखेबाज हैं तो अन्धे को बधाई देनी होगी कि चलो एक धोखेबाज से तो तुम्हारा पीछा छूटा।

यह सत्य है कि कभी-कभी मनुष्य को सन्देह या भ्रम भी होते हैं परन्तु इससे यह कैसे स्वीकार किया जाए कि जहाँ भ्रम हो वहाँ कुछ है ही नहीं। ज्ञानेन्द्रियों को असत्य कहने वाले शङ्करस्वामी कहते हैं-(शा० भा० २।३।१८) **नित्य-स्वरूप-चैतन्ये घ्राणाद्यानर्थक्यमिति चेत्। न गन्धादिविषयविशेषपरिच्छेदार्थत्वात्॥** अर्थात् यदि आत्मा स्वरूप से चेतन है तो उसके लिए घ्राणादि इन्द्रियों की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर स्वयं शंकर स्वामी देते हैं गन्धादि विषय अलग-अलग हैं उनके जानने के लिए करण या साधन चाहिए। जादू वह जो सिर चढ़ बोले। यदि विषय असत्य होते, इनका अस्तित्व न होता तो इन्द्रियाँ भी न होतीं।

सन्देहवादियों की शंकाएँ भ्रम मूलक है। उनके स्वयं के कार्यों में स्पष्ट दिखाई देता है कि उन्हें अपनी इन्द्रियों की गवाही पर भरोसा है। उन्हें भूख लगती है तो वह खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं, प्यास लगती है तो पेय पदार्थों का सेवन करते हैं। शंकरस्वामी स्वयं मार्ग पर चलते हुए अपनी आँखों पर विश्वास करते थे नहीं तो उनका किसी मार्ग पर चलना या अन्य कोई भी कार्य करना असम्भव हो जाता।

वास्तव में यदि भ्रम शब्द पर विचार किया जाए तो हम पाएँगे कि भ्रम वास्तव में स्वयं ही निश्चयात्मक ज्ञान के आधार पर ठहरा हुआ होता है। यदि किसी वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान न हो तो भ्रम हो ही नहीं

सकता, मान लीजिए दो व्यक्ति हैं जिनकी टोपी तो एक जैसी है परन्तु कोट के रंग अलग-अलग हैं। आप उन्हें दूर से आता देखते हैं सब से पहले टोपी को देख पाते हैं आपको भ्रम होता है कि यह अमुक व्यक्ति है किन्तु जब कोट भी दीखने लगता है तब यह अमुक व्यक्ति है यह निश्चय हो जाता है। अब आप विचार करें क्या यहाँ आँख ने धोखा दिया? उत्तर है-नहीं। उसने टोपी की सूचना निर्विवाद रूप से दी थी। जब कोट भी सामने आ गया तो निर्णय हो गया कि अमुक व्यक्ति है। यह कार्य भी आँख के सहयोग से हुआ। यही स्थिति मृग-तृष्णा की है। जब आपने दूर से देखा कि यह तो लहरे लेता हुआ जल-सा प्रतीत होता है। यहाँ आप केवल उस गुण को देख रहे हैं जो जल और रेत में समान है पूर्व दृष्टान्त की टोपियों की तरह। यहाँ रेत के चमकदार कण धूप के कारण और अधिक चमक उठे हैं। पास आने पर भ्रान्ति दूर हो गई क्योंकि रेत का विशेष गुण दिखाई दे गया, जो पानी में नहीं है। इसलिए दर्शनकार गौतम ने सूत्र बनाया-''**समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरूपलब्ध्यनुपल-ब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः॥**'' (न्याय० १।१।२३)

अर्थात् समान धर्मों का ज्ञान और विशेष का ज्ञान न होने से अथवा विशेष धर्मों की अपेक्षा से 'संशय' उत्पन्न होता है।

रेत और जल के समान धर्म उसी प्रकार प्रकट हो जाते हैं जैसे दो व्यक्तियों की टोपी। विशेष धर्म उस प्रकार प्रकट नहीं होते जैसे दो व्यक्तियों के भिन्न कोट। यही हाल सीप और चाँदी का है, रस्सी और साँप का भी है। वास्तव में आँख उसी **समान धर्म** अथवा सादृश्य का दर्शन करती है, **विशेष धर्म** दूरी के कारण छुप जाते हैं। इसी प्रकार शंकर द्वारा दिये गए दृष्टान्तों में एक भी ऐसा नहीं है जिसमें कहा जा सके कि आँख अथवा अन्य चारों ज्ञानेन्द्रियों ने धोखा दिया।

अब शंकर स्वामी जी अपने शारीरक भाष्य में किस प्रकार प्रमाणों को असत्य ठहराते हैं यह देखते हैं-

१. प्रत्यक्षादि प्रमाण और शास्त्र अविद्या जन्य हैं।

२. यदि आत्मा शरीर और इन्द्रियों में 'अहं' बुद्धि अथवा 'मम' बुद्धि न करे तब तक आत्मा में प्रमाता की उपपत्ति नहीं हो सकती।

३. बिना इन्द्रियों के प्रत्यक्षादि प्रमाण नहीं रहते।

४. आत्मा के अधिष्ठान के बिना भी इन्द्रियाँ काम नहीं कर सकतीं।

५. जब तक देह में आत्मा का अध्यास न किया जाए तब तक शरीर से कार्य नहीं होता।

६. यदि यह सब कुछ न हो तो आत्मा में प्रमातृभाव नहीं उठ सकता।

७. यदि प्रमाता (आत्मा) में प्रमातृत्व न हो तो प्रमाणों में प्रवृत्ति न होगी।

८. इसलिए प्रत्यक्षादि प्रमाण और शास्त्र अविद्यावत् हैं।

अब हम विचार करेंगे कि शंकर स्वामी की युक्तियाँ कैसे अयुक्त हैं। हम देखेंगे कि उनका कथन हेतु न होकर हेत्वाभास मात्र है। शंकर स्वामी शरीर और इन्द्रियों में आत्मा का अध्यास मानते हैं। उनका कहना है कि आत्मा शरीर और इन्द्रियों को मैं मानता हूँ, इसका कारण उसका अज्ञान है। इसलिए सब व्यापार अविद्या है। अध्यास क्या है यह हम उन्हीं के शब्दों में समझ लेते हैं।

१. स्मृति के आधार पर किसी दूसरे पदार्थ में उसकी कल्पना करना जैसे दूध का जला छांछ को भी फूंक मार कर पिए।

२. एक वस्तु में दूसरी की कल्पना अध्यास है जैसे ठूंठ को चोर समझना।

३. भेद या विशेष का ज्ञान न होने से जो भ्रम होता है वह अध्यास है जैसे कुत्ता हड्डी चूसते हुए अपने खून के स्वाद को हडी का स्वाद समझता है।

४. एक वस्तु के धर्म में दूसरी के गुण मान लेना जैसे जड़ मूर्ति के साथ चेतनवत् व्यवहार करना।

अब देखना है कि आत्मा देहेन्द्रिय में अध्यास कैसे करता है, आगे आप लिखते हैं–

१. पुत्र स्त्री आदि को दुःखी देखकर व्यक्ति स्वयं को दुःखी, सुखी मान लेता है।

२. शरीर के धर्मों का स्वयं में अध्यारोप कर लेता है जैसा मैं मोटा हूँ, काला हूँ इत्यादि। मैं बैठा हूँ, चल रहा हूँ आदि।

३. इन्द्रियधर्म को अपना मानना जैसे मैं लंगड़ा या काला हूँ।

४. अन्तःकरण के धर्म स्वयं में मान लेना, जैसे मैं संकल्प करता हूँ।

अब हमें इन चारों में अध्यास का एक भी उदाहरण दिखाई नहीं देता। अध्यास अर्थात् ''अतस्मिंस्तद्बुद्धिः''। आत्मा कभी भी शरीर में और इन्द्रियों में आत्मबुद्धि नहीं करता हाँ इनको साधन तो सदा मानता है। अध्यास में जिसका अध्यास किया गया वह वस्तु नहीं होती। जैसे रस्सी में साँप का अध्यास किया गया वहाँ साँप वास्तव में नहीं था। यदि वहाँ सचमुच साँप होता तो वह अध्यास न कहलाता। परन्तु साधक के पास साधन (वास्तविक वस्तु) होते हैं। पति के पास पत्नी होती है। पति का दुःख वह दुःख नहीं है जो पत्नी का है। मान लें पत्नी पेट दर्द से तड़प रही है, पति अपने में पेट दर्द का अध्यास नहीं करता। उस समय पति की भावना होती है कि यह मेरी पत्नी है, इसे दर्द हो रहा है। उसका कष्ट दूर करने की बेचैनी होती है, इसे पति का दुःख कहा गया, न कि पत्नी में पति का अध्यारोप हुआ। इसी प्रकार कोई भी कष्ट होने पर मनुष्य

यह नहीं कहता कि मैं शरीर हूँ सब कहते हैं मेरा शरीर है।

आचार्य ने तो अपने भाष्य का आरम्भ भी इस कल्पना से किया है कि चेतन विषयी अर्थात् आत्मा में अचेतन विषय और उसके धर्मों का मान लेना अध्यास है। इसके लिए उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया।

एक और प्रतिपत्ति की मीमांसा करते हैं। शंकर स्वामी के दादा गुरु गौड़पाद जी की माण्डूक्योपनिषद् पर एक कारिका है-

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥

इस पर आचार्य का भाष्य है-जो पदार्थ आदि में न हो और अन्त में भी न हो वह मध्य में भी नहीं रहती, ऐसा लोक प्रसिद्ध है। यही जाग्रतावस्था में सब की स्थिति है। मृगतृष्णा न आदि में होती है और न ही अन्त में। इसलिए उन्हें असत्य समझा जाता है। लोगों को यह वितथ अर्थात् असत्य प्रतीत नहीं होते वह इन्हें सत्य ही मानते हैं।

गौड़पादाचार्य इसको लोक में स्वयंसिद्ध मानते हैं। जो आदि में न हो और अन्त में भी न हो वह बीच में भी नहीं होती यह कौन से लोक की स्वयंसिद्धि है, हमें आज तक इसका ज्ञान नहीं हुआ। गौड़पाद जी जन्म से पूर्व नहीं थे और आज भी नहीं है तो क्या इस आधार पर यह स्वीकार कर लिया जाए कि गौड़पाद जी कभी नहीं हुये। जो खाद्य पदार्थ पूर्व में न थे, बाद में भी नहीं थे तो यह जानकर कैसे शंकर स्वामी अपदार्थों से अपना पेट भरते रहे। आप कहेंगे शंकर स्वामी ने दृष्टान्त जो दिया है वह सत्य है। मृगतृष्णिका मिथ्या अवश्य है परन्तु इसका कारण आदि और अन्त होना नहीं है। मृगतृष्णा किस अंश में मिथ्या है और किस अंश में सत्य, हम इसकी मीमांसा पहले ही कर चुके हैं। जब पहले इस आदिमत्व और अन्तिमत्व को सप्रमाण स्वीकार कर लिया जाता तो मृगतृष्णा का दृष्टान्त दे सकते थे, परन्तु वास्तव में इसके पक्ष में लोक में कोई दृष्टान्त है ही नहीं। यहाँ शंकर और उनके दादा गुरु यह बताना चाहते हैं कि संसार के सभी पदार्थ आदि अन्त वाले नहीं हैं। इसलिए केवल मध्यवर्ती होने के कारण उनकी सत्ता नहीं है। केवल ब्रह्म ही है, जो अनादि अनन्त है इसलिए अब भी है। इसलिए वास्तव में केवल ब्रह्म ही सत्य है।

अब शाङ्कर शारीरक-भाष्य को देखिए। सर्वप्रथम वाक्य जो वेदान्त भाष्य में मिलता है यह है-''**युष्मत् अस्मत् प्रत्ययगोचरयोः तमः प्रकाशवत् इतर-इतर-भाव-अनुपत्तौ सिद्धायां तद्धर्माणाम् अपि सुतरां इतर-इतर-भाव-अनुपपत्तिः।**''

'तुम' कहते हैं विषय=ज्ञेय पदार्थ अर्थात् जिसको जानना है।

'विषयी' अर्थात् जानने वाले को 'मैं' कहते हैं।

इन दोनों में इतना भेद है जितना प्रकाश और अन्धकार में। इन दोनों

के स्वभाव नहीं मिलते। इसलिए इनके धर्म भी नहीं मिलते यहाँ आचार्य ने अध्यास क्रा भवन खड़ा करना है, इसलिए ज्ञाता और ज्ञेय पदार्थों में प्रकाश और अन्धकार का अन्तर बताया है। अर्थात् प्रकाश रहेगा तो अन्धकार नहीं रहेगा, अन्धकार रहेगा तो प्रकाश नहीं रहेगा। अपने इस कथन को आचार्य स्वयंसिद्ध मान लेते हैं। इसमें कोई युक्ति अथवा प्रमाण देने की वह आवश्यकता नहीं समझते।

जिस प्रकार साँप कोई वस्तु नहीं होता रस्सी में उसका अध्यास कर लेते हैं, उसी प्रकार कोई वस्तु नहीं वस्तुतः मैंने अर्थात् ज्ञाता ने अपने आप में तुम्हारा अर्थात् ज्ञेय का अध्यास कर लिया। वास्तव में पदार्थ रहा ही नहीं। यदि शंकर की इस प्रतिपत्ति को यथावत् स्वीकार कर लिया जाए तो ब्रह्म सत्य-जगन्मिथ्या होने में शेष कुछ भी न बचा। इसलिए अध्यास के जो चार वर्ग शंकर स्वामी ने किए वह सभी मिथ्या सिद्ध होते हैं। जब कोई व्यक्ति कहता है 'अन्धोऽहम्' तो इसका केवल इतना ही तात्पर्य होता है कि मैं नेत्रहीन हूँ। मैंने नेत्रों का अपने में अध्यास कभी नहीं किया।

और शंकर स्वामी का यह लिखना कि-

स्वभाविक लोक व्यवहार केवल यह मैं यह मेरा है रूपी मिथ्याज्ञानवश सत्य और असत्य को एक कर देने से होता है। -शाङ्कर भाष्य भूमिका

जगत् के सारे व्यवहारों को झूठा सिद्ध करने के लिए केवल लोक व्यवहार का उल्लेख भर कर दिया, जिसको लोक में कोई भी मिथ्या नहीं मानता। जब मैं कहता हूँ यह मेरा कलम है, यह मेरा भाई है तो इसमें कौन-सी बात गलत हो जाती है। क्या 'मैं' मिथ्या हूँ, इसे तो शंकर स्वामी भी न मानेंगे क्योंकि मैं को वह भी प्रकाशवत् सत्य मानते हैं। क्या पुस्तक को मिथ्या मान लिया जाए। जब तक इसका मिथ्यात्व सिद्ध न हो, कैसे मान ले। इसका मिथ्यात्व बन्ध्या के पुत्र की तरह स्वयं सिद्ध तो है नहीं। वहाँ भी बन्ध्या मिथ्या नहीं है। पुत्र भी मिथ्या नहीं है। बन्ध्या पुत्र का सम्बन्ध अर्थात् बन्ध्या पुत्रवतीत्व मिथ्या है। बन्ध्यापन और पुत्रवतीत्व परस्पर विरुद्ध धर्म है। बन्ध्या का भाई परस्पर विरोधी धर्म नहीं है। शङ्कराचार्य जी की पहली बात दूसरी बात का विरोध करती है। अर्थात् नैसर्गिक बातों का मिथ्या होना। यदि यही मिथ्या हो तो सत्य किसे कहेंगे। अब स्वप्न का विचार करते हैं। साधारणतः शरीर युक्त आत्मा की चार अवस्था है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। चौथी अवस्था का हमारे विषय से सम्बन्ध नहीं है। जिस अवस्था में आत्मा का मन और इन्द्रियों द्वारा अर्थों से सम्बन्ध रहता है वह जाग्रत अवस्था। जब आत्मा का मन से सम्बन्ध रहता है वह स्वप्न। इस अवस्था में जो संस्कार जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों द्वारा मन पर पड़े वही निद्राकाल में उठ खड़े होते हैं, यही स्वप्न है। सुषुप्ति की स्थिति में न सोने वाले की कोई कामना होती है न स्वप्न ही देखता है। वेदान्त के स्वाप्ययात् १।१।९ सूत्र का भाष्य करते हुए

आचार्य लिखते हैं जागृत अवस्था में मन इन्द्रियों के अर्थों को ग्रहण करता है। स्वप्न में केवल वासनाएं रहती है, अर्थ नहीं रहते। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जाग्रतावस्था के बिना स्वप्नावस्था नहीं हो सकती। बहुधा यह प्रश्न उठता है कि जागृत अवस्था स्वप्न की अनुगामिनी है या स्वप्नावस्था जागृत की। यह तो सत्य ही है कि दोनों अवस्थाएँ हैं आत्मा की ही। यदि जागृत अवस्था स्वप्न की अनुगामिनी है तो जैसे स्वप्न में बाह्य पदार्थ नहीं रहते, उसी प्रकार जागृत अवस्था में भी कोई बाह्य पदार्थ नहीं होंगे। जिस प्रकार स्वप्न अवस्था में बाह्य पदार्थों का अभाव है उसी प्रकार जागृत में भी बाह्य पदार्थों का अभाव होगा। यदि जागृत अवस्था मौलिक है तो स्वप्न की प्रतीतियाँ भी बाहर की चीज़ें होगीं। स्वयं जाग्रत अवस्था में भी कई स्थितियाँ ऐसी होती है जिनमें बाह्य पदार्थों का अभाव होकर भी प्रतीति होती है। यथा स्मृति, अनुप्रतीति (यह स्मृति के आधार पर होती है) विकल्पना यथा चित्रकार और वैज्ञानिक करते हैं, भ्रम कभी-कभी कुछ का कुछ दीखना और आभास। यह सभी जाग्रत की स्थितियाँ हैं। इनमें बाह्य पदार्थ नहीं होते परन्तु किसी न किसी रूप में यह बाह्य पदार्थों के आश्रित होती है। ऋषि पतञ्जलि कहते हैं-'अनुभूत विषयाऽ-सम्प्रमोषः स्मृतिः।'

जब तक अनुभूत विषय नहीं होंगे स्मृति नहीं होगी। शेष चारों अवस्थाएँ स्मृति के आश्रित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं-'स्मृतिरेषा यत्स्वप्नदर्शनम्' अब देखना यह है कि शंकर अपने मायावाद में स्वप्न का क्या प्रयोग करते हैं।

उनकी प्रतिज्ञा है-जागृत में देखी हुई वस्तुएँ मिथ्या है।

हेतु-क्योंकि वह दिखाई देती है।

उदाहरण-जैसे स्वप्न में देखी हुई वस्तुएँ।

उपनय-जिस प्रकार स्वप्न में देखी वस्तुएँ मिथ्या हैं उसी प्रकार जागृत में देखी वस्तुएँ भी मिथ्या हैं।

निगमन-जागृत में देखी वस्तुएँ भी मिथ्या है। शंकर स्वामी जागृत का मिथ्यात्व सिद्ध करना चाहते हैं हेतु देते हैं दिखाई देने से। इसका तात्पर्य है जो वस्तु दिखाई पड़े वह मिथ्या है इससे यह भी तो अर्थापत्ति से सिद्ध होता है न कि जो न दिखाई पड़े वह सत्य ही होगा। मिथ्या सिद्ध करने के लिए वह दृश्यमानत्वात् को पर्याप्त हेतु मानते हैं। परन्तु हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि जो भी हम स्वप्न में देखते हैं वह स्मृति है अर्थात् वह वस्तु या व्यक्ति कभी न कभी, कहीं न कहीं अवश्य था। उसके स्मृति, संस्कार मेरे मन पर अंकित हैं। शंकर ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान-कारण मानते हैं।

एकत्व से बहुत्व कैसे उत्पन्न हो गया, यह एक जटिल प्रश्न है। उपादानकारण से कार्य की उत्पत्ति में पहले आरम्भक अर्थात् उपादान, निमित्त और साधारण कारण चाहिए। फिर परिणाम। कई चीजों को मिला लेने को प्रारम्भ और वस्तु के बन जाने को परिणाम। जैसे ईंटों से घर बनना, पानी से बर्फ बनना आदि। और किसी वस्तु का विपरीत प्रतीत होना विवर्त कहलाता है। कार्य-कारण शब्दों का तात्विक प्रयोग हम आरम्भ और परिणाम को कह सकते हैं विवर्त को नहीं। विवर्त वस्तुतः कार्य नहीं है। पानी की बर्फ, मिट्टी से घड़ा तो वास्तव में कार्य है। परन्तु रेत में पानी विवर्त है। रस्सी में साँप की कल्पना वह व्यक्ति करता है जिसने साँप को भली प्रकार देखा हुआ है। आप समझ सकते हैं कि पानी तो वस्तुतः एक ही था उसमें परिमाण कैसे उत्पन्न हो गया। मकान बनाने के लिए ईंटें तो बहुत सारी थी। परन्तु पानी को जमाने के लिए भी पानी की असंख्य ईंटों (कणों) की आवश्यकता होती है। उपादानकारण के सबसे छोटे अंग को अणु कहते हैं, जिसके आगे विभाग नहीं हो सकते, परन्तु शंकर स्वामी की बात निराली है वह कहते हैं-'परमाणूनामपि विनाशो भविष्यति'।

अपने मत की पुष्टि के लिए शंकर स्वामी कुछ भी कर सकते हैं। पहले उन्होंने या उनके दादा गुरु या उनके किसी पूर्वज ने मात्र ब्रह्म ही सत्य है कि कल्पना की, फिर न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, मीमांसा सभी दर्शनों को नास्तिक प्रतिपादित किया। केवल वेदान्त के आश्रय चलें, परन्तु वहाँ भी उनकी दाल नहीं गली। स्वयं ही ब्र० सूत्र २।२।२६ सूत्र- 'नासतोऽदृष्ट्त्वात्।'

सूत्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं-"नाभावाद्भाव उत्पद्यते। यद्यभा-वाद्भाव उत्पद्येताभावत्वाविशेषात् कारणविशेषाभ्युपगमोऽनर्थकः स्यात्।"

अभाव से भाव उत्पन्न नहीं होता। यदि होता तो अभाव सर्वत्र होने के कारण विशेष उपादान की आवश्यकता न पड़ती। इसी युक्ति से जैसे अभाव से भाव नहीं हो सकता उसी प्रकार भाव से भी अभाव नहीं हो सकता। इसलिए हम यह मानते हैं कि ईश्वर तो एक है परन्तु और भी बहुत-सी वस्तुएँ हैं जिनसे संसार बनता है। आत्माएँ भी हैं जिनके लिए संसार बनाया जाता है और भ्रमवादी जो जगत् को मिथ्या समझते हैं, केवल ब्रह्म को ही सत्य समझते हैं। जगत् को मिथ्या समझकर उसे प्रमाण कोटि में कैसे रख सकते हैं, और उससे किसी प्रमेय की सिद्धि कैसे हो सकती है। मैं किसी के भवन की खूब प्रशंसा करते हुए कारीगर की प्रशंसा करते हुए यह भी कह दूँ कि भवन तो वास्तव में है ही नहीं तो निर्माता और कारीगरी की सिद्धि कैसे हो सकती है?

सम्पर्क सूत्र-कुटिया नं०-११४, आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

मेला चाँदापुर विषयक जिज्ञासा

—भावेश मेरजा

'परोपकारी' पाक्षिक के अक्टूबर (द्वितीय) २०१५ अंक में प्राध्यापक श्री राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' ने अपने लेख में लिखा है–"मुसलमानों ने ऋषि के सामने प्रस्ताव रखा कि हम और आप दोनों मिलकर गोरे पादरियों से टक्कर लें। परस्पर की बातचीत फिर हो जायेगी, पहले इनको हराया जाये।" (पृष्ठ १३)

उपर्युक्त बात पढ़कर ऋषि दयानन्द के प्रमुख–प्रामाणिक जीवन चरित्र में दिया गया मेला चाँदापुर का वृत्तान्त पढ़ने का मन हुआ। उनमें इस सम्बन्ध निम्नलिखित विवरण पाया–

(१) पण्डित लेखरामजी संगृहीत स्वामीजी के जीवन चरित्र में लिखा है–"प्रथम कुछ सज्जनों ने स्वामीजी के डेरे पर जाकर यह कहा कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर पादरियों के मत का खण्डन करें।" (पृष्ठ २९६, २००७ ई० संस्करण)

(२) पण्डित लक्ष्मणजी लिखित स्वामीजी के सम्पूर्ण जीवन चरित्र (कि जिसे स्वयं श्री जिज्ञासुजी ने अनूदित एवं सम्पादित किया है) में लिखा है–"कई लोगों ने स्वामीजी के पास जाकर कहा कि आर्य और मुसलमान मिलके ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है।" (भाग १, पृष्ठ ४८२, प्रथम संस्करण २०१२ ई०)

(३) बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्यायजी संगृहीत स्वामीजी के जीवन चरित में लिखा है–"कुछ लोग स्वामीजी के डेरे पर गये और यह प्रस्ताव किया कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर ईसाइयों का खण्डन करें।" (पृष्ठ ३५५, वि० सं० २०५० संस्करण)

(४) श्री हरबिलास सारदाजी कृत स्वामीजी के अंग्रेजी जीवन चरित्र में लिखा है–"On the 19th March, **some people** went to Swamiji and suggested that the Hindus and Muslims should unite to refute Christianity. Swamiji said rather, all should meet together in love to find out the truth without prejudice and without attacking any one." (Life of Dayanand Saraswati, page 167, Edition 1946)

डॉ० भवानीलाल भारतीयजी ने 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' के पृष्ठ २८४ पर लिखा है कि–"कुछ लोगों ने स्वामीजी के निकट आकर यह प्रस्ताव किया कि हिन्दू और मुसलमान धर्माचार्यों को मिलकर ईसाई पादरियों को पराजित करना चाहिए।" (पृष्ठ २८४, १९८३ ई० संस्करण)

उपर्युक्त सभी जीवन चरित्रों में स्वामीजी से उस बात कहने वालों

के लिए-"कुछ सज्जनों, कई लोगों, कुछ लोग, कुछ लोगों, some people-इत्यादि ही लिखा है। **'मुसलमानों'** ने यह बात स्वामीजी से कही, ऐसा तो किसी ने नहीं लिखा है।"

अत: जिज्ञासा यह है कि जिन लोगों ने स्वामीजी के समक्ष उपर्युक्त प्रस्ताव रखा था, वे सब 'मुसलमान' थे-ऐसा प्रा० राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' ने किस ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर लिखा है?

श्री जिज्ञासुजी ने अपने इस विवेच्य लेख में दूसरी बात यह लिखी है कि-"महर्षि ने कहा कि **सत्य न स्वदेशी है न विदेशी होता है।**" स्वामीजी का यह कथन भी उपर्युक्त किसी भी जीवन चरित्र के 'मेला चाँदापुर' विषयक प्रकरण में पढ़ने को नहीं मिला। मान्य जिज्ञासुजी ने यह कथन किस ग्रन्थ में से लेकर अपने इस लेख में उद्‌धृत किया है, यह पता नहीं चला। ❑❑

स्वामी श्रद्धानन्द के जन्म का वर्ष

-आर्यमुनि वानप्रस्थ, मेरठ

स्वामी श्रद्धानन्द के जन्म के ईसवी सन् के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अधिकतर विद्वान् स्वामीजी का जन्म वर्ष १८५६ ई० को मानते हैं। आइये देखें की वास्तविक वर्ष क्या है?

स्वामीजी का जन्म फाल्गुन कृष्ण १३ सं० १९१३ वि० है। सामान्यत: विक्रमी सं० और उसके संगत ईसवी सन् में ५७ वर्ष का अन्तर है। प्राय: विद्वान् लोग १९१३ में से ५७ घटाकर जन्म वर्ष १८५६ मानते हैं। पर वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। ईसवी सन् का प्रारम्भ प्राय: हिन्दी माघ मास में होता है। विक्रमी संवत् पुराना ही चलता रहता है जो चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को बदलता है। उदाहरण के लिये इसी वर्ष को लें। अंग्रेजी सन् २०१५ चल रहा है और विक्रमी २०७२। दोनों का आज जुलाई मास में ५७ का अन्तर है। परन्तु ३१ दिसम्बर २०१५ को माघ कृष्ण ६ है। १ जनवरी २०१६ माघ कृष्ण ७ संवत् २०७२ को होगी। अब यह अन्तर ५६ वर्ष का हो गया है। यह अन्तर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तक चलेगा। तब सं० २०७३ होने से दोनों का अन्तर पुन: ५७ हो जायेगा। इस प्रकार फाल्गुनबदि १३ संवत् १९१३ को २२ फरवरी १८५७ ई० था।

अत: स्वामी श्रद्धानन्द की जन्मतिथि फाल्गुन कृष्ण १३ सं० १९१३ वि० तदनुसार २२ फरवरी १८५७ ई० है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। विद्वानों से निवेदन है कि कृपया इसको ही स्वामीजी की प्रामाणिक जन्मतिथि एवं अंग्रेजी तारीख स्वीकार करें।

स्वामी श्रद्धानन्दजी का बलिदान २३ दि० १९२६ तदनुसार अगहन कृष्ण चतुर्थी सं० १९८३ वि० को हुआ था।

साहित्यिक सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान और डॉ० रामविलास शर्मा

—डॉ० राजश्री शुक्ला

प्राध्यापिका हिन्दी विभाग, कोलकाता विश्वविद्यालय

[भारत में वामपंथी हिन्दी समीक्षकों की द्विविध धारा है। एक धारा डॉ० नामवर सिंह और उनके शिष्य वीरभारत तलवार की है जो ऋषि दयानन्द की देन को पक्षपातपूर्ण होकर नकारते हैं। दूसरी धारा डॉ० रामविलास शर्मा की है जो स्वामी दयानन्द सरस्वती के अवदान की प्रशंसा करते हैं। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन तथा आचार्य दीपंकर भी मार्क्सवादी होते हुए भी ऋषि दयानन्द के प्रशंसक थे। विदुषी लेखिका ने डॉ० शर्मा के लेखन की साहित्यिक-सांस्कृतिक अस्मिता की विवेचना की है—सम्पादक]

डॉ० रामविलास शर्मा हिन्दी में मार्क्सवादी आलोचना पद्धति का आधार लेकर आए, परन्तु उसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकसित करते हुए एक प्रगतिशील, सांस्कृतिक आलोचक के रूप में स्थापित हुए। इसके साथ-साथ उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना पद्धति को वैज्ञानिक तरीके से, वैज्ञानिक आधारों पर और विकसित किया। डॉ० रामविलास शर्मा ने हिन्दी की दीर्घ साहित्यिक परम्परा में निरंतर प्रवाहित लोक चेतना की धारा को पहचान कर, उसे आधुनिक युग चिंतन की जनवादी-प्रगतिशील धारा के साथ संयुक्त कर दिया।

एक चिंतक के रूप में डॉ० रामविलास शर्मा ने साहित्य और समाज के सम्बन्धों पर बहुत गहनता से विचार किया। इन्होंने साहित्यालोचन के क्षेत्र में साहित्य और साहित्येतर जैसे वर्गीकरण को स्पष्ट रूप से नकारते हुए, भाषा और समाज, इतिहास बोध और साहित्य, लोक जीवन और साहित्य, दर्शन की विभिन्न सरणियों के साहित्य के साथ गहरे सम्बन्ध को स्वीकार किया। अर्थात् मानवीय ज्ञान परम्परा का कोई भी अंश जो व्यक्तित्व के बौद्धिक गवाक्ष खोलने में सक्षम हो, उसे साहित्य की आलोचना के लिए प्रयुक्त किया। इस दृष्टि से इन्होंने आलोचना कर्म को एक बहुत गम्भीर अध्यवसाय युक्त और दायित्वपूर्ण कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया। युगबोध के साथ साहित्य के गहरे सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए डॉ० शर्मा कहते हैं-''साहित्य के भाव, विचार उनको व्यक्त करने के ढंग गतिशील युग प्रवाह में बदलते रहे हैं। उनके इस बदलने के क्रम को, इस बहाव को स्थायी कहा जा सकता है। परन्तु साहित्य और समाज के सम्बन्ध की यह व्याख्या स्वीकार करने वाले लोग कहते हैं। सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों और विचारों पर पड़ता है,

वैसा ही उनको व्यक्त करने वाली शैली, व्यंजना के ढंग, शब्द चयन वाक्य विन्यास आदि पर भी पड़ता है।'' युगीन परिस्थितियों व सामाजिक परिवेश का लेखन पर इतना अधिक प्रभाव स्वीकार करने पर अनेकशः रचनाकार की वैयक्तिक स्वाधीनता व लेखकीय स्वतन्त्रता का प्रश्न उठाया जाता है। परन्तु डॉ० रामविलास शर्मा युगबोध को अधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए मानते हैं, क्योंकि युगीन परिवेश का ज्ञान रचनाकार के व्यक्तित्व व उसकी रचना-दोनों को अधिक व्यापक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। कोई भी साहित्यिक कृति स्वयं में स्वायत्त रचना नहीं होती; उसकी एक सामाजिक अवस्थिति और एक सामाजिक उत्तरदायित्व भी होता है। उस दायित्व की पूर्णता व रचना की उत्कृष्टता के लिए आवश्यक है कि वह सामाजिक विकास व परिवर्तन को समझे, उसके नकारात्मक तत्त्वों से स्वयं को मुक्त कर, उसके सकारात्मक तत्त्वों को अनुस्यूत करने का प्रयत्न करे। डॉ० शर्मा कहते हैं-''सामाजिक विकास के नियमों को जानने से लेखक को वह पतवार मिल जाती है जिसके सहारे वह जनता के विशाल सागर में अपनी नाव खे सकता है। समाजशास्त्र की पोथी पढ़ने में थोड़ा समय लगाने से वह सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों और वर्गों को उनके उचित सन्दर्भ में देखने की योग्यता पा सकता है।'' मूल रूप से साहित्य के साथ समाज विज्ञान को संयुक्त करने की बात डॉ० रामविलास शर्मा इसलिए कहते हैं, क्योंकि वे साहित्य को उसकी एकांगिता से मुक्त देखना चाहते हैं। एकायामी साहित्य आकाश कुसुम के समान हवाई रूप सौन्दर्य के काल्पनिक दर्शन तो करवा सकता है, परन्तु जीवन-संवेदना की जड़ों से युक्त न होने के कारण वह न तो दीर्घजीवी हो सकता है और न ही सार्थक होता है। साहित्य का विषय जीवन से भिन्न कोई अन्य क्षेत्र नहीं है, बल्कि साहित्य विषय की दृष्टि से इतना व्यापक है कि इसमें मानवीय ज्ञान-विज्ञान के समस्त विषय शामिल किए जा सकते हैं। वस्तुतः साहित्य के प्रति एक गम्भीर और अडिग निष्ठा के कारण डॉ० रामविलास शर्मा ने साहित्य और जीवन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार किया। साहित्य के अन्तर्गत रचनात्मक साहित्य तथा आलोचनात्मक साहित्य-दोनों को ही उन्होंने उपयुक्त महत्त्व दिया है। साहित्य के प्रति इस गम्भीर निष्ठा के बीज वस्तुतः उनके अपने चिंतन व चरित्र से ही उत्पन्न हैं।

बैसवाड़े की भूमि के प्रखर कृषक संस्कारों से युक्त रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व में मिट्टी की सोंधी उपजाऊ गंध, कृषक का जीवट व कर्मठता, श्रम संस्कृति से उपजी आशुतोष मनोवृत्ति, किसानी का धैर्य व साहस और ग्राम्य लोक जीवन की सहज रूप से ललकार व चुनौती को पलटनिया देकर पटकने की ताकत-सब कुछ नियोजित था। उनके चरित्र व व्यक्तित्व में जो कुछ था, वह सब सोलहो आने खरा था, न कोई बनावट, न नकल, न कुंठा, न दुराव। शुद्ध स्वर्ण के समान इस निष्कलुष

शुद्धता ने डॉ० शर्मा के चिंतन को वह प्रखर तेज उपलब्ध कराया कि आज हिन्दी आलोचना का कोई भी अध्ययन इनकी आलोचना को छोड़कर नहीं किया जा सकता। अपनी आलोचना को इस प्रखर प्रभा से युक्त करने के लिए डॉ० शर्मा ने अपने चिंतन की भूमि को भी जोत कर ऐसे तैयार किया था कि उस चिंतन भूमि पर हिन्दी आलोचना अपने प्रगतिशील सिद्धान्तों की फसल उपजा सके। डॉ० शर्मा ने आलोचना कर्म को एक बहुत गम्भीर, बहुत प्रयत्नसाध्य और दायित्वपूर्ण सामाजिक कर्त्तव्य बना दिया। इस दायित्व को पूरा करने के लिए आलोचक को स्वयं बहुत अध्ययन करना होगा, अनेक विषयों को गहराई से समझना होगा, तभी उसकी आलोचना में उस भावयित्री प्रतिभा की आभा झलक सकेगी, जो साहित्य को उसका वास्तविक स्थान दिला सके (समाज में भी और पाठक के संवेदन संसार में भी)। डॉ० शर्मा ने स्वयं अपनी आलोचना की भूमि ऐसे ही परिश्रम से तैयार की थी। कीट्स का अध्ययन करने की आवश्यकता हुई तो इसके लिए इटालियन सीखी, प्रोरेफेलाइट कलाकारों की चित्रप्रतिलिपियों को समझने के लिए चित्रकला का सिद्धान्त समझा, अकबर का मकबरा देखने जाने पर इतिहास, वास्तुकला और महाकाव्यों के साम्य का बोधन किया, अपना शोध ग्रन्थ देना था, तो स्वयं टाइपिंग सीखी और टाइप किया। प्रकारान्तर से डॉ० शर्मा ने साहित्य की आलोचना के लिए इतिहास, दर्शन, भाषा विज्ञान, कलाओं का ज्ञान, संस्कृति, वाणिज्य-सब की समझ को आवश्यक माना। वस्तुतः मानवीय ज्ञान परम्परा का कोई भी अंश जो व्यक्तित्व और चिंतन के बौद्धिक स्तर को ऊँचा कर संकीर्ण ग्रंथियों को खोलने में सक्षम हो उसे आलोचना के उपकरण के रूप में स्वीकार किया।

डॉ० रामविलास शर्मा ने साहित्यालोचन को एक ऐसा सामाजिक सांस्कृतिक कर्त्तव्य माना, जो समाज की भावदशा, संस्कृति व चिंतन को सँवारने में महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में साहित्य प्रणयन के जिन प्रमुख हेतुओं को स्वीकार किया गया है, उन्हें ही साहित्यालोचन के लिए भी आवश्यक माना जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि मात्र अध्ययन व अध्यवसाय से ही श्रेष्ठ आलोचना की रचना सम्भव नहीं होती, बल्कि इनके लिए मौलिक चिंतन भी आवश्यक होता है। इस मौलिक चिंतन का आधार प्रतिभा के साथ-साथ एक व्यवस्थित इतिहास बोध होगा। इतिहास बोध का निर्माण अपनी परम्परा राजनीति और अपने दर्शन को एक साथ मिलाकर समझने से हो सकता है। ''परम्परा केवल साहित्य की नहीं है। परम्परा भाषा की भी है, परम्परा इतिहास की भी है, परम्परा हमारे दर्शन शास्त्र की है, बहुत सारी परम्पराएँ हैं। हम साहित्य में काम करते हैं, साहित्य के बारे में सोचते हैं। इस बात को जानना बहुत जरूरी है कि अंग्रेजी राज कायम होने से पहले यहाँ के विभिन्न प्रदेशों के बीच सम्पर्क कैसे होता था। क्या संस्कृत के माध्यम से

सम्पर्क होता था, अंग्रेजी तो यहाँ की राजभाषा थी नहीं, फिर ऐसा कैसे होता था कि राजस्थान की लोककथा का विषय लेकर बंगाल के कवि कविता लिख रहे हैं? ऐसा कैसे होता था कि कबीर की पाण्डुलिपियाँ महाराष्ट्र के मन्दिरों में सुरक्षित हैं।'' यही कारण है कि एक पूर्णतः आधुनिक विचारधारा अर्थात् मार्क्सवाद से अपने चिंतन का प्रारम्भ करने वाले डॉ० शर्मा की आलोचकीय परिधि में ऋग्वेद से लेकर भागवत तक सब शामिल हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन से प्रेरणा लेने वाला यह आलोचक तुलसीदास की लोकोन्मुखता और जीवनधर्मिता पर मुग्ध रहता है। भारतीय समाज में आध्यात्मिक, धार्मिक व भक्ति के ग्रन्थ के रूप में मान्य भागवत के विषय में इनका मौलिक चिंतन यह प्रमाणित करता है कि भागवत में संन्यास से अधिक जीवन का गीत है। यदि यह इतना अधिक जीवनधर्मी न होता तो इतने युगों से भारतीय लोकमानस में अपना स्थान बनाए रखने में सक्षम न हो सकता। डॉ० रामविलास शर्मा का इस दृष्टि से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि इन्होंने हिन्दी की साहित्यिक आलोचना का सम्बन्ध पुनः जीवन एवं परम्परा से जोड़ दिया। यह साहित्यिक आलोचना जीवन से छिन्न होकर मात्र साहित्य पर आधारित एक अकादमिक अभ्यास के रूप में परिवर्तित हो रही थी, यह विदेशी भूमि पर उपजे विभिन्न साहित्यिक आन्दोलनों से तो प्रेरणा ले रही थी, परन्तु जिस समाज में रची जा रही थी, उस समाज की भावनाओं, संवेदनाओं से शून्य हो रही थी। डॉ० रामविलास शर्मा ने इस दृष्टि से साहित्य, विचारधारा, इतिहास बोध और लोक जीवन-सबको समान महत्त्व के साथ साहित्यिक आलोचना के लिए महत्त्वपूर्ण माना। आलोचना के इन स्वनिर्मित प्रतिमानों के आधार पर इन्होंने हिन्दी साहित्य की आलोचना में प्रचलित अनेक भ्रान्त धारणाओं को खारिज करते हुए, प्रमाणों व उदाहरणों के साथ अपनी नई मान्यताएं उपस्थित कीं। कबीर व तुलसी के बीच भक्ति व चिंतन को आधार बनाकर प्रायः एक दूसरे के प्रतिपक्ष में रखने के अभ्यास के विरुद्ध डॉ० शर्मा ने इन्हें नई दृष्टि से व्याख्यायित किया-

''मैं कबीर और तुलसी को एक परम्परा का कवि मानता हूँ। ये दोनों दरबार से बाहर पनपती हुई साहित्यिक परम्परा के कवि हैं, दोनों दरबार और दरबारी संस्कृति के विरोधी हैं। दोनों रीतिवाद के विरोधी हैं। सामंतवाद के विरोधी हैं।......तुलसीदास ने किसान जीवन चित्रित किया है। कबीर किसानों से लगभग अपरिचित थे। आप उनके सामाजिक परिवेश को देखिए। कबीर चरखा कातते हैं, कबीर करघा चलाते हैं। वे शहर के कवि हैं, वे कारीगर कवि हैं। एक है कारीगर दूसरा है किसानों के बीच जीवन बिताने वाला। दोनों के सामाजिक परिवेश काफी अलग

हैं, एक युग में रहते हुए भी हालांकि तुलसीदास भी बनारस में रहते हैं। सामाजिक परिवेश एक जगह एक है।'' डॉ० रामविलास शर्मा मानते हैं कि रचनाकार की कथावस्तु का सामाजिक आधार बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। आलोचक के लिए इस सामाजिक आधार को पहचानना आवश्यक है, तभी वह रचना व लेखक दोनों की आलोचना के साथ न्याय कर सकेगा।

आलोचना के लिए ईमानदार मौलिक चिंतन को प्रमुख मानने वाले डॉ० रामविलास शर्मा ने हिन्दी के आलोचना साहित्य को अनेक नवीन आयामों की ओर उन्मुख किया। भारतीय लोक को प्रमुखता देते हुए प्रत्येक आलोचकीय सिद्धान्त को भारतीयता अर्थात् भारतीय समाज और लोक जीवन से उठाया और उसी के आधार पर सिद्धान्त को यथायोग्य महत्त्व दिया। इस दृष्टि से इन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परम्परा को और अधिक आधुनिक विकास के साथ पुष्ट किया। नवजागरण हो या १८५७ का स्वाधीनता संग्राम, भक्ति साहित्य का लोक जागरण हो या हिन्दी जाति की अवधारणा, भाषावैज्ञानिक चिंतन हो या भारतीय साहित्य पर विचार, आधुनिकता हो या प्रगतिशीलता; प्रत्येक विषय पर इनका विचार उस मौलिक चिंतनप्रसू मनीषा से उद्‌बुद्ध होता था, जो अपना सारस्वत उपजीव्य भारतीय वाङ्मय परम्परा से ग्रहण करती थी। यद्यपि रामविलास शर्मा ने लोक जागरण, हिन्दी नवजागरण, ऋग्वैदिक समाज, उपनिषदों व हिन्दी जाति के गठन का उत्साह के साथ प्रखर वर्णन किया है, परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि ऐसा करते हुए वे कभी भी पुनरुत्थानवादी अहंकार पोषण के संकीर्ण मार्ग पर नहीं जाते। भारतीय परम्परा के साथ भारतीय आधुनिकता और वैश्विक आधुनिकता को मिलाकर वे एक नया पाठ रचने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए हिन्दी के हित और स्वाभिमान के लिए निरंतर प्रयत्न करते हुए वे पुनः-पुनः इस बात पर जोर देते हैं कि हिन्दी इसलिए शक्तिशाली है, क्योंकि वह श्रमजीवियों की भाषा है। श्रमजीवियों की शक्ति से हिन्दी शक्तिशाली है, और सामाजिक वर्ग विभाजन को रोकने और हिन्दी के स्वाभिमान में इस शक्ति का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। ''मध्यवर्ग चाहे उच्चवर्ग की देखादेखी नकलची होता जा रहा है, लेकिन एक बहुत बड़ा तबका है जिसमें मजदूर, किसान, दूध बेचने वाले, फल-सब्जी बेचने वाले या कारीगर वगैरह शामिल हैं-इनमें अब भी अपनी भाषा और अपनी जीवन संस्कृति के प्रति एक अटूट लगाव बचा हुआ है और उन्हें कोई आसानी से बहका नहीं सकता।......यह सारे मजदूर वर्ग का चरित्र हैं जिनमें दृढ़ता और अपनी जीवन से जुड़ाव काफी होता है। मध्यवर्गीय ढुलमुलपन वहाँ नहीं है। तो यह जो मजदूर शक्ति है, यह हमारी भाषा की भी शक्ति है।'' इस उद्धरण में ध्यान देने की बात यह भी है कि भाषा की शक्ति की चर्चा ही नहीं, बल्कि मजदूर शब्द के अर्थ को भी डॉ० शर्मा ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में और अधिक सटीक और

व्यापक बना दिया है। इसमें समस्त श्रमजीवी वर्ग को शामिल कर लिया है।

भाषा के प्रश्न के साथ-साथ हिन्दी जाति का प्रश्न डॉ० शर्मा के चिंतन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अवस्थान है। हिन्दी जातीयता एक ऐसा विषय था, जिस के अस्तित्व पर बहुत से हिन्दी भाषी स्वयं भी संशय रखते थे। डॉ० शर्मा ने इस विषय पर बड़ी गम्भीरता और तार्किक प्रमाणों के साथ अपनी बात रखी। उन्होंने हिन्दी जाति के दीर्घकालिक सांस्कृतिक इतिहास को खोज कर उपस्थित किया और भारत राष्ट्र के विकास के लिए इस जाति के विकास को अवश्यम्भावी माना। हिन्दी जाति के लोकजागरण, नवजागरण, भारत में राष्ट्रीयता के उभार, १८५७ के स्वाधीनता संग्राम-इन सबके पारस्परिक सम्बन्धसूत्रों को इन्होंने बहुत स्पष्टता के साथ सामने रखा। साथ-साथ निरंतर यह विश्वास व्यक्त किया कि विश्व इतिहास व विश्व के सामाजिक राजनीतिक मंच पर यदि भारत को अपनी भारतीयता के साथ उपस्थित होना हो तो सर्वप्रथम इसी हिन्दी जाति की सम्भावनाओं को विकसित करना होगा। हिन्दी जाति के प्रति इस प्रकार की धारणा किसी जातीय पक्षपात या रूढ़िवादी कठमुल्लेपन की उपज नहीं थी, बल्कि इसका एक वैज्ञानिक तार्किक आधार भी इन्होंने उपस्थित किया। इन्होंने माना कि ''जातीय चेतना के निर्माण की प्रक्रिया कई सामंती विभेदों-बंधनों को तोड़कर जनतन्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।........जातीय चेतना केवल भाषागत, प्रदेशगत चेतना नहीं है। उसमें साम्राज्य विरोध, सामती रूढ़ियों का विरोध और समाज को पुनर्गठित करने की धारणाएँ शामिल हैं।'' हिन्दी प्रदेशों की जागृति को भारतीय समाज की जागृति के लिए आवश्यक मानते हुए उन्होंने लिखा-''भारतीय संस्कृति के केन्द्र में हिन्दी प्रदेश है। संस्कृति के जितने केन्द्र हैं, वह उसी क्षेत्र में हैं जिसे हम हिन्दी प्रदेश कहते हैं। जैसे मगध और कोशल, ये बहुत पुराने केन्द्र हैं। इन्होंने केवल हिन्दी प्रदेश के इतिहास को नहीं, बल्कि सारे भारत के इतिहास को रूपायित किया है। व्यापारिक पूँजीवाद के केन्द्र भी, जैसे आगरा, इसी क्षेत्र में थे। उसके बाद अंग्रेजों के खिलाफ १८५७ का जो सबसे बड़ा संग्राम हुआ, उसकी मूल भूमि भी हिन्दी प्रदेश ही है।''

इस हिन्दी जाति के श्रमजीवी वर्ग (जो यहाँ का बहुसंख्यक वर्ग भी है) की कर्मठता, जुझारूपन, साम्राज्यवाद विरोधी भाव जिजीविषा इत्यादि के विषय में अत्यन्त विश्वास से चर्चा करते हुए भी इस जाति के क्षेत्र में साहित्य व साहित्यकारों की उपेक्षा की डॉ० शर्मा स्पष्ट शब्दों में आलोचना करते हैं। भारत की अन्य जातीयताओं जैसे बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु या गुजरात में अपनी भाषा, साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रति विशेष लगाव, सम्मान एवं गर्वबोध परिलक्षित होता है। हिन्दी क्षेत्र यदि

अपनी जातीयता के प्रति सचेतन हो जाए तो वह वस्तुतः आज की बहुत-सी सांस्कृतिक आपदाओं से जूझने में भारतीय जनता की शक्ति बन सकता है। आज के युग में भूमण्डलीकरण, उससे पनपे उपभोक्तावाद, मुक्त बाजारीकरण के द्वारा आया नव पूँजीवाद, सामंतवाद, नव-उपनिवेशवाद- इन सबके प्रतिरोध की चेतना अपनी जातीयता की सजग चेतना से सम्भव हो सकती है। इन सांस्कृतिक संकटों से मुक्ति की आकांक्षा प्रत्येक सजग बुद्धिजीवी के समान डॉ० शर्मा की भी आकांक्षा है। इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए वे भारतीय श्रमजीवी जनता के वास्तविक जनतन्त्र के लिए और हिन्दी जाति की अस्मिता के लिए संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष का औजार है-उनकी साहित्यिक आलोचना। अतः स्वाभाविक ही है कि यह साहित्यिक आलोचना जीवन के सभी आयामों को समाविष्ट करके ही होगी। सांस्कृतिक संरचनात्मकता के लिए साहित्य एवं साहित्यिक आलोचना को कहीं अधिक प्रभावी और जनोन्मुखी होना पड़ेगा।

हिन्दी जाति की जातीय सचेतनता भारत के सांस्कृतिक इतिहास के ज्ञान व उसके प्रति स्वाभिमान के बोध से निर्मित होगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त डॉ० रामविलास शर्मा ने अपने मौलिक चिंतन के साथ, मौलिक पद्धति से भाषा विज्ञान, भारतीय इतिहास व दर्शन का अध्ययन किया। इन्होंने नवीन तथ्यों के माध्यम से प्राच्यविदों द्वारा राष्ट्रीय आत्महीनता उपजाने वाली समस्त धारणाओं को पलट दिया। इन्होंने वैदिक सभ्यता व हड़प्पा-मोहनजोदड़ों की सभ्यताओं के मध्य इन दोनों के अन्तर्मिश्रण के साक्ष्य उपस्थित किए और यह प्रमाणित किया कि भारतीय इतिहास की अति प्राचीन सांस्कृतिक अखण्ड परम्परा रही है। उपनिवेशवादियों व प्राच्यविदों द्वारा उपजाए जा रहे यूरोप की श्रेष्ठता के मिथक से तनिक भी आक्रांत न होते हुए डॉ० शर्मा इन सबकी धारणाओं को प्रमाणपुष्ट तथ्यों के माध्यम से खारिज करते हुए विश्व इतिहास के विकास में भारतीय अवदान का उल्लेख करते हैं। वे बताते हैं कि ऋग्वैदिक संस्कृति भारतीय मूल के लोगों की एक श्रम-सौन्दर्य से युक्त संस्कृति है। ऋग्वेद में सबसे अधिक महत्ता श्रम की दिखाई पड़ती है। ''ऋग्वेद के ऋषि अनेक प्रकार के शारीरिक श्रम करते हैं। किसी भी तरह का श्रम हो उससे घृणा नहीं है। इस शारीरिक श्रम के साथ वे काव्य भी रचते हैं, यज्ञ भी करते हैं देवताओं के लिए स्तुतियाँ भी बनाते हैं। ऋग्वेद की सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम का भेद मिट गया है। यह हमारा अतीत है और जिस भविष्य की ओर जाना है, वह भी यही है।'' वस्तुतः ऊँच-नीच के वर्णवादी विभेद को मिटाने का समुचित उपाय यह है कि मनुष्य हर प्रकार के श्रम को एक समान महत्त्व के साथ करे। **इसी प्रसंग में यह देखना भी दिलचस्प होगा कि ऋग्वैदिक संस्कृति को भारतीय परम्परा का अतीत व भविष्य दोनों मानने वाले डॉ० शर्मा**

आर्यसमाज के विषय में किस प्रकार की राय रखते थे। भारतीय पुनर्जागरण के उन्नायकों में प्रमुख और विशेषकर हिन्दी जाति व हिन्दी क्षेत्र के नवजागरण के लिए सर्वाधिक प्रयत्न करने वाले स्वामी दयानन्द व उनके द्वारा प्रतिपादित आर्यसमाज के योगदान के विषय में प्रायः हिन्दी आलोचकों ने उपेक्षा का रुख अपनाया। स्वामी दयानन्द द्वारा तत्कालीन भारतीय सामाजिक रूढ़ियों को मिटाने, जाति-पाँति का भेद मिटाने, स्त्रियों की शिक्षा के लिए किए गये समस्त प्रयत्नों को, उपनिवेशवाद के विरुद्ध आर्यसमाज द्वारा किए गए सभी संघर्षों को बद्धमस्तिष्क रूढ़िवादी प्रगतिवादियों ने निरंतर अपनी आलोचना की परिधि के बाहर रखा। स्वामी दयानन्द की दूरदर्शिता ने भी वैदिक संस्कृति को ही भारत के भविष्य की संस्कृति और वैश्विक संस्कृति के रूप में देखा था। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपने अत्यन्त प्रिय कवि तुलसीदास के प्रति दयानन्द के विरोध को जानते हुए भी भारतीय समाज के विकास व हिन्दी भाषा के प्रचार हेतु आर्यसमाज द्वारा किए गए कार्यों की सराहना की। दयानन्द के योगदान को रेखांकित किया। ''मैं स्वयं दयानन्द का समर्थक हूँ और मानता हूँ कि वे अस्सी प्रतिशत सही थे। अपनी नई पुस्तक 'शूद्र, मुसलमान और भारत की जातीय समस्या' में मैं एक अध्याय लिखने जा रहा हूँ, 'संस्कृति का पुनर्मूल्यांकन और संन्यासी दयानन्द की परम्परा।' मेरा यह मानना है कि धार्मिक अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को जैसा धक्का स्वामी दयानन्द ने दिया, वैसा सारे सुधारक मिलकर नहीं दे पाए।'' दयानन्द के योगदान को स्वीकार करते हुए भी यह स्पष्ट है कि डॉ० शर्मा की ऋग्वैदिक संस्कृति सम्बन्धी धारणा पर आर्यसमाज या दयानन्द की मान्यताओं का प्रभाव नहीं है। उनका ऋग्वेद की परम्परा तक पहुँचने का पथ भाषा वैज्ञानिक अध्ययन व सामाजिक-आर्थिक इतिहास के अध्ययन से होता हुआ जाता है। वे भारतीय समाज की उस अदम्य जिजीविषा व ऊर्जा को बार-बार रेखांकित करना चाहते हैं, जिसके कारण यह जाति इतने दीर्घकालिक शोषण व दमन से कुचली जाने के बावजूद अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित रखे हुए, बार-बार उठकर खड़ी हो जाती है। डॉ० रामविलास शर्मा मार्क्सवादी चिंतन से प्रेरणा लेते हुए भी उसकी सीमाओं में नहीं बँधते। उन्होंने मार्क्स-एंगेल्स के विचारों को यूरोपियन नवजागरण की देन माना। साथ-साथ यह भी कहा कि इस मार्क्सवाद के निर्माण में उन समाजों का भी योगदान है, जिन्हें यूरोपीय पिछड़ा हुआ समाज कहते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने स्पष्ट किया कि यूरोपीय नवजागरण के पहले ही भारतीय नवजागरण घट चुका था और यूरोपीय नवजागरण, यूरोप का अपना बौद्धिक उत्पादन नहीं था, बल्कि इसके चिंतन में भारतीय दर्शनों व चिंतनों का यथेष्ट प्रभाव है। डॉ० शर्मा ने ऋग्वेद, उपनिषद्, चार्वाक,

बौद्ध जैन दर्शन, भौतिकवादी चिंतन, यथार्थवादी दर्शन, द्वन्द्ववादी चिंतन सरणियों के क्रम विकास को सूचित करते हुए भारतीय वेदांत के क्रान्तिकारी सर्वात्मवाद का उल्लेख किया और यूरोप को भारतीय दर्शन के महान् प्रदेय की ओर देखने को बाध्य किया। ''यूनान से यूरोप ने सीखा; यूनान के विद्वान् भारत से सीखना चाहते थे। यह निश्चित है कि देमोक्रितुस और एपिकुरूस से पहले भारत में परमाणुवाद की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। भारतीय परमाणुवाद, फिर यूनानी परमाणुवाद, उसके बाद ब्रिटेन और फ्रांस का भौतिकवाद आगे मार्क्स-एंगेल्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद- यह क्रम पहचानना आवश्यक है।'' सही क्रम विकास की समझ वस्तुतः आलोचना की एक प्रमुख कसौटी है। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में इसी क्रम की पहचान करते हुए वे अमीर खुसरों से लेकर तुलसीदास से होते हुए भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन इत्यादि तक हिन्दी की लोकधर्मी प्रगतिशील साहित्यिक परम्परा को स्पष्ट करते हैं। नवजागरण की निरंतरता को हिन्दी के साहित्यिक साक्ष्य के माध्यम से उद्घाटित करते हैं।

आज इस बात पर आश्चर्य हो सकता है कि अंग्रेजी साहित्य को लेकर अध्ययन और अध्यापन करने वाला व्यक्ति हिन्दी के हित के निमित्त इस प्रकार का अध्यवसाय एवं अटूट तपस्या कैसे कर सकता है। अंग्रेजीदाँ होकर अत्यन्त सहज रूप से सामाजिक सम्मान अर्जित कर लेने के सरल सुलभ मार्ग की अपेक्षा हिन्दी तथा भारतीयता के हित के लिए प्रखर संघर्ष करने का कंटकाकीर्ण पथ उन्होंने क्यों चुना होगा। परन्तु डॉ० शर्मा के परिवेश व व्यक्तित्व को जान लेने के उपरान्त यह बातें आश्चर्य का विषय नहीं लगतीं, बल्कि सहज विश्वसनीय प्रतीत होने लगती हैं। अपने जीवनकाल में ही अपनी आत्मकथा लिखने की हिम्मत और ईमानदारी बरतने वाला व्यक्ति अपनी कर्मठता को अपने लोगों की कर्मठता से जोड़ते हुए आत्मकथा का शीर्षक ही 'अपनी धरती अपने लोग' रखता है। डॉ० शर्मा में अपने देश, अपनी संस्कृति, परम्परा व अपनी जनता से जुड़ाव का यह बोध बहुत गहरा था। अपनेपन व लगाव के इस गहरे बोध के साथ-साथ इनकी ओर से प्रतिपक्षियों से लड़ने का हौसला भी बहुत प्रबल था। यही कारण है कि यद्यपि इनका बौद्धिक व्यक्तित्व बहुत तर्कशील, आक्रामक और प्रखर प्रतिवादी है, परन्तु आलोचना के लिए विषय का चयन इन्होंने सदैव हृदय के आधार पर किया। इन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा ''भाषा विज्ञान में काम करने की एक प्रेरणा यह थी कि पाश्चात्य विद्वान् कहते थे कि भारत का कोई भी भाषा परिवार भारत का नहीं है। जो आर्य भाषा परिवार है, संस्कृत से लेकर हिन्दी तक, उसकी भाषाएँ बोलने वाले तो बाहर से आए ही थे। मैंने एक चीज पकड़ी भारत की जो आर्य भाषाएँ हैं, उनकी बहुत बड़ी विशेषता है जो भारत के बाहर कहीं

नहीं दिखाई देती। न प्राचीन भाषाओं में दिखाई देती है, न आधुनिक भाषाओं में। यह है सघोष महाप्राण ध्वनियों का व्यवहार। यह एक धुरी है, एक आधारशिला है जिसके बल पर मैं कहता हूँ कि भाषा तत्त्वों का निर्यात भारत से बाहर हुआ है। आयात भी हुआ है।......साम्राज्यवाद कहता है कि तुम्हारा कोई भाषाई रिक्थ नहीं है। मैं कहता हूँ हमारा भाषाई रिक्थ है, हमारे भाषा-परिवारों के आपसी सम्बन्ध को समझे बिना तुम यूरोप की भाषाओं का विकास नहीं समझ सकते।'' इनके प्रिय कवि निराला पर जब साहित्यिक आरोप होने लगे तो इन्होंने निराला साहित्य की आलोचना के लिए कलम थामी। भारतेन्दु पर लिखने की प्रेरणा भी अपने युग की जनता की स्थिति पर हार्दिक व्यथा ही बनी। इन्होंने कहा कि यदि मुझे भारतेंदु युग से आज के युग का एक घनिष्ठ सम्बन्ध न दिखाई देता तो मैं यह पुस्तक अभी न लिखता। यह सोचकर कि आज की समस्याओं को सुलझाने के लिए हमें उस युग से प्रेरणा मिल सकती है, मैंने इसे लिखना प्रारम्भ किया। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि आलोचना के लिए जिस विषय का चयन किया जाय, चाहे किसी कृति, चाहे व्यक्ति या युग उसकी युगीन प्रासंगिकता आवश्यक है। विषय का महत्त्व इस आधार पर स्थापित होगा कि वह शाश्वत मानवीय मूल्यों, प्रगतिशील वैश्विक मूल्यों को किस सीमा तक उद्वेलित करने में समर्थ है। साहित्यिक आलोचना के लिए बौद्धिकता का संयोग अपेक्षित है। बौद्धिकता के साथ हार्दिकता का यह कांचनसौरभ योग जब आलोचक के दृष्टिकोण व चिंतन में घटित होता है तभी उसे आलोचकीय कृति के, उस युग के व रचनाकार के अन्तर्विरोध समझ में आते हैं। डॉ० शर्मा ने तुलसी-भारतेंदु-आचार्य शुक्ल, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, निराला, सबकी आलोचना करते हुए उनकी विसंगतियों, उनके अन्तर्द्वन्द्वों को भी निरंतर उद्घाटित किया है। परन्तु इन विसंगतियों की अपेक्षा बहुत अधिक पक्षधरता उनके लोकधर्मी, प्रगतिशील, मानवीय पक्षों के प्रति प्रकट की है। आज डॉ० शर्मा के आलोचकीय मानदण्डों का अध्ययन करते हुए हमें उनकी भी अनेक विसंगतियों के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनकी आलोचना के मूल लक्ष्य जिन सांस्कृतिक लोकधर्मी, जनवादी मूल्यों को केन्द्रित कर बने हैं, उनकी दृष्टि निरंतर स्पष्ट व सुसंगत बनी रहती है।

अपने आलोचकीय लेखन के प्रारम्भ से ही डॉ० रामविलास शर्मा ने आलोचना को समाज के शिक्षित संभ्रात वर्ग के लिए लिखित वाग्विलास व चिंतन विलास मात्र की सीमा से बाहर निकाला। उसे जन की शक्ति वाहिनी और जनता के लिए मानते हुए उसे हिन्दी की उस लोकधर्मी परम्परा से जोड़ा जो भारतीय साहित्य में निरन्तर बनी रही थी और जिसे हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी शैली में स्थापित किया था। डॉ० शर्मा ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी लेखन शैली को अत्यन्त स्पष्ट

तर्कपूर्ण और सहज रखा। इनकी लेखन शैली की यह सहजता वस्तुतः उनके मस्तिष्क में विचारों की स्पष्टता की द्योतक है। अपनी धरती के अपने लोगों के जीवन एवं साहित्य से प्राप्त तथ्य, परम्परा से उनकी पुष्टि और उस आधार पर पूर्ण विश्वास के साथ अपने निष्कर्षों की स्थापना– इसी स्पष्ट क्रम के साथ उनकी आलोचना प्रक्रिया निरंतर गतिमान रही। डॉ० रामविलास शर्मा ने निरंतर आलोचकीय मर्यादा को महत्त्वपूर्ण माना। आलोचना में औचित्य का बोध इस मर्यादा की संरक्षा करता है और आलोचक का जीवन, उसका आचरण एवं उसके लेखन की संगति इस औचित्य बोध को उत्पन्न करती है। हिन्दी के आज के अकादमिक साहित्यिक जगत् में जब हम लेखक के जीवन, आचरण व लेखन की इस वांछित संगति में भयावह विसंगतियाँ देखते हैं तो डॉ० रामविलास शर्मा, जैसे ऋषि आलोचक के आलोचकीय मूल्य व मानदण्ड और अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगते हैं। भारत की आज की सामाजिक स्थिति जातिगत, वर्गगत, सम्प्रदायगत भेदों को उभार रही हैं; जनता निरन्तर असमानता के प्रति असहिष्णु हो रही है; राजनीति, प्रशासन, मीडिया के आपराधिक गठजोड़ में समाज जैसा पिस रहा है; विश्व बाजार और अति यान्त्रिकता के कारण बढ़ती बेरोजगारी और उससे हताश युवा शक्ति का अवसाद ग्रस्त होना; इन सबके कारण समाज में असहिष्णुता और अपसंस्कृतिकरण–इन सबके दौर में डॉ० शर्मा के द्वारा तलाशे गए भारतीय संस्कृति के मूल्यों का पुनर्जागरण और महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। उन्होंने अथर्ववेद के सूक्तों के उदाहरण देकर–**जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं** (यह पृथ्वी अनेक भाषाएँ बोलने वाले जनों को धारण करती है) **तथा नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम्** (यह पृथ्वी विभिन्न धर्मों के मानने वालों को ऐसे धारण करती हैं, जैसे वे एक ही घर के रहने वाले हों)–भारत की बहुभाषी बहुजातीय, बहुधर्मी, बहुला समावेशी संस्कृति को ही हमारी मूल पहचान के रूप में चिह्नित किया। आज पुनः इस पहचान को व्यापक बनाने की आवश्यकता है। आज हमारा देश एवं हमारी जाति को पुनः एक पुनर्जागरण की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस पुनर्जागरण की आधारशिला डॉ० रामविलास शर्मा जैसे मनीषियों के चिंतन पर स्थापित होगी। डॉ० शर्मा ने अपने आचरण, चरित्र व चिंतन से प्रतिपादित किया कि साहित्यिक आलोचना एक पवित्र सारस्वत कर्म है। इसमें किसी भी प्रकार की संकीर्णता का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। यह महत् लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त, महत् चिंतन व प्रखर सामर्थ्य से किया जाने वाला सारस्वत कर्म है। यह ऋषि आलोचक रामविलास हैं और यह उनके द्वारा प्रतिपादित आलोचकीय सारस्वत मन्त्र है।

[विदुषी लेखिका आर्यसमाज के गौरव प्रो० पं० उमाकान्त उपाध्याय की सुपुत्री हैं—सम्पादक]

पौराणिक पण्डित माधवाचार्य से मेरा शास्त्रार्थ

—वेद-मार्तण्ड डॉ० महावीर मीमांसक

२४ जून (सन् ठीक से याद नहीं) सन् १९५३-५४ की बात है। स्थान धनौन्दा गाँव, जि० महेन्द्रगढ़ (वर्तमान हरयाणा)। उन दिनों मैं गुरुकुल झज्झर (वर्तमान हरयाणा) में पढ़ता था। पौराणिक पं० माधवाचार्य ने आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। पं० माधवाचार्य कमलानगर, देहली में रहते थे और उन दिनों पंजाब का हरयाणा से विभाजन नहीं हुआ था। अतः पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा में वर्तमान हरयाणा और देहली सम्मिलित थे। अतः पं० माधवाचार्य का आर्यसमाज को शास्त्रार्थ का यह चैलेञ्ज सीधा पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा पर आक्रमण था। पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा ने इस चैलेञ्ज को पूरी सिंह गर्जना के साथ स्वीकार किया। अब पं० माधवाचार्य ने दूसरा पैंतरा बदला और शर्त रखी कि शास्त्रार्थ केवल संस्कृत भाषा में होगा। क्योंकि पं० माधवाचार्य यह भली-भाँति जानते थे आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी पण्डित भी संस्कृत में उतनी गति नहीं रखते जितनी शास्त्रार्थ में विजेता वक्ता की होनी चाहिये। अब पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा के अधिकारियों को चिन्ता हुई कि संस्कृत में शास्त्रार्थ करने के लिये किसका नाम प्रस्तुत किया जाये? क्योंकि आर्यसमाज में पं० शान्तिप्रकाश जैसे धाकड़ शास्त्रार्थ महारथी तो थे परन्तु उनकी संस्कृत में उतनी गति नहीं थी कि धारा-प्रवाह बोल सकें।

पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा में उन दिनों पं० जगदेवसिंहजी सिद्धान्ती और आचार्य भगवान् देव, गुरुकुल झज्जर (स्वामी ओमानन्दजी) भी होते थे, अतः इस समस्या की बात उन तक भी आयी। मैं (लेखक) उन दिनों गुरुकुल झज्जर में पढ़ता था और धारा-प्रवाह महाकवि वाणभट्ट की शैली से संस्कृत बोलता था, इस तथ्य को पं० जगदेवसिंहजी सिद्धान्ती और आचार्य भगवान् देवजी जानते थे और साक्षात् देखते तथा सुनते थे। अतः उन्होंने सभा के दूसरे अधिकारियों को मेरे नाम का सुझाव दिया और सभी की सहमति से यह निश्चय हुआ कि गुरुकुल झज्जर के ब्र० महावीर (लेखक) पं० माधवाचार्य से शास्त्रार्थ करेंगे और शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाशजी जो उन दिनों पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा के पण्डित थे, वे ब्र० महावीर की आवश्यकता होने पर सहायता करेंगे। मुझ से पूछा गया तो मैं तो सदैव ऐसे कार्यों के लिये तैय्यार रहता था, क्योंकि गुरुकुल के वार्षिकोत्सवों पर इस प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिये मैं ही जाना जाता था। मैं सहर्ष तैय्यार था। उस समय मेरी आयु १९-२० वर्ष थी।

एक दिन पहले मुझे गुरुकुल से धनौन्दा गाँव ले जाया गया। मुझे वहाँ ढ़ाणी में रखा गया। ढ़ाणी वहाँ की स्थानीय भाषा में उसे कहा जाता था

जो केवल पुरुषों के रहने-ठहरने का स्थान होता था और उसे पूलों की बाड़ से कच्ची छत डाल बनाया जाता था। पं० शान्तिप्रकाशजी वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे।

अगले दिन २४ जून को शास्त्रार्थ होना था। शास्त्रार्थ के लिये गाँव की चौपाल को चुना गया। एक तरफ मैं आसन पर बैठ गया, आसन चौपाल के चबूतरे पर लगाया गया था। मेरे पीछे आदरणीय पं० शान्तिप्रकाशजी बैठ गये। शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाशजी के बैठने से मुझे बहुत ही प्रोत्साहन और हौसला मिला। मेरे बांयें तरफ गुरुकुल झज्जर से लाई गई आवश्यक पुस्तकों का ढेर रख दिया गया, ताकि प्रमाण की आवश्यकता पड़ने पर तत्सम्बद्ध पुस्तक से उसे दिखाया जा सके। मेरे समक्ष पं० माधवाचार्य जी बैठे थे उनकी सहायतार्थ उनका नवयुवक पुत्र पं० प्रेमाचार्य बैठा था। और हमारी तरफ हमारे पक्ष में दर्शक और समर्थक बैठ गये और पं० माधवाचार्य की तरफ उनके समर्थक और दर्शक बैठ गये।

शास्त्रार्थ का विषय वेदों में ईश्वर की मूर्तिपूजा (वेदेषु ईश्वरस्य मूर्तिपूजा) था। शास्त्रार्थ की रणनीति मैंने बना ली थी। ईश्वर के निराकार होने के वेदों से अनेक प्रमाण मैंने उपस्थित कर लिये थे, जब ईश्वर निराकार है तो उसकी मूर्ति कैसी, और उसकी मूर्ति के अभाव में उसकी मूर्ति की पूजा कैसी? इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी पं० माधवाचार्य को घेरने की मैंने सोच बना ली थी।

शास्त्रार्थ का मण्डनात्मक पक्ष (वेदों में मूर्तिपूजा) क्योंकि पं० माधवाचार्य का था अत: हमने उन्हें ही अपने पक्ष में पहले बोलने को कहा। हमारा तो क्योंकि खण्डनात्मक विपक्ष था, अत: हम बाद में पक्ष का खण्डन करेंगे। अत: पं० माधवाचार्य पहले बोले। हमने उनके पक्ष के खण्डनात्मक विपक्ष में वेद से अनेक मन्त्र ईश्वर के निराकार होने के समर्थन में प्रस्तुत किये। माधवाचार्य उत्तर नहीं दे पाये। दो बिन्दुओं पर पं० माधवाचार्य घिरे। पहला बिन्दु था कि मैंने पं० माधवाचार्य से संस्कृत में पूछा कि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' 'इति मन्त्रांशं भवान् प्रमिणोति वा न वेति?' 'प्रमिणोति' शब्द सुनकर पं० माधवाचार्य घबराये, वे इस शब्द का अर्थ नहीं समझ पाये और पास में बैठे हुये दूसरे पण्डित से पूछने लगे कि यह ब्रह्मचारी क्या कह रहा है? मन्त्रांश तो था ही स्पष्ट उनके पक्ष के विरुद्ध प्रमाण। दूसरा बिन्दु था कि पं० माधवाचार्य अद्यतन भूतकाल में संस्कृत शब्दों का 'लङ्' लकार में प्रयोग कर रहा था जब कि पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार अद्यतन भूतकाल में लुङ् लकार का प्रयोग होना चाहिये, लङ् लकार का प्रयोग अनद्यतन प्रत्यक्ष भूतकाल में ही होना चाहिये। मैं अद्यतन भूत में लुङ् लकार का ही प्रयोग करता था और यङन्त शब्दों की प्रसङ्गानुसार भरभार कर देता था। पं० माधवाचार्य न तो समझ

पाते थे और न ही मेरे आक्षेपात्मक प्रश्नों का उत्तर दे पाते थे। अत्यन्त संक्षेप में मैंने यहाँ यह लिखा है। व्याकरण की गुत्थियों को सामान्य पाठक नहीं समझ पायेंगे। पं० माधवाचार्य अन्त में अपने समर्थकों को संकेत देकर उठकर चले गये। हम अपने स्थान पर गये। हमारे समर्थकों ने जयकार के नारों से वातावरण गुञ्जायमान कर दिया। पं० शान्तिप्रकाशजी ने पीछे से मेरी पीठ थपथपायी, उनको किसी प्रकार के बोलने की नौबत ही मैंने नहीं आने दी। सभा की पत्रिका में उन दिनों यह समाचार कई बार छपा।

कई जिज्ञासुओं ने मुझे इस विषय की प्रामाणिक जानकारी देने को कहा अतः यह लेख लिखा है।

श्री राजेन्द्रजी जिज्ञासु ने शास्त्रार्थ महारथी पं० शान्तिप्रकाशजी का जीवन चरित्र छपवाया था। उसमें उन्होंने यह घटना सही रूप में नहीं दी, तिथियाँ तो पूर्णतः गलत दी हैं। मैंने उनको जब पत्र द्वारा इसकी सही जानकारी दी तो उन्होंने बड़े विनीतभाव से क्षमा माँगी और पुस्तक के अगले संस्करण में इसे ठीक करने की बात लिखी। यह उनकी सद्ग्राह्यता का प्रमाण है। सन् कौन-सा था, इतिहास लेखक खोज करके बतायें।

सम्पर्क सूत्र-भू०पू० संस्थापक एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
चलभाष : ०९८११९६०६४०

कुरआन-परिचय

लेखक—देवप्रकाश (अरबी-संस्कृत के मर्मज्ञ)

लम्बे समय से अप्राप्य यह पुस्तक तीन खण्डों में उपलब्ध है। १५०० पृष्ठ के तीनों खण्ड डाक व्यय तथा वी०पी० व्यय सहित मात्र ५५०/- में प्राप्त है।

सम्पर्क कीजिये-०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९

स्वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रभाकरदेव आर्य के लिए वर्द्धमान ऑफसेट प्रिन्टर्स, एच-७७, इण्डस्ट्रीयल एरिया, हिण्डौन सिटी (करौली) राज० में मुद्रित एवं श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ-ट्रस्ट ब्यानिया पाडा, हिण्डौन सिटी (राज०) से प्रकाशित।
सम्पादक-**प्रभाकरदेव आर्य**

पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार कृत

चतुर्वेद भाष्य का भव्य प्रकाशन

चौदह खण्ड, आकार-२०×३०/८ में,

८६५० पृष्ठों में प्रकाशित

इस सहज समझ आनेवाले भाष्य के लिए भाष्यकार ने सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कठोर तप करके इसे तैयार किया। कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसेट पर प्रकाशित इस भाष्य में मन्त्रों पर स्वर लगाये गये हैं। प्रत्येक शब्द का हिन्दी भाषा में अर्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद के गूढ़ार्थ को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

❑ ३१००.०० तीन सहस्त्र एक सौ रुपये भेजने पर चारों वेद (१४ भाग, पृष्ठ ८६५०) ट्रान्सपोर्ट या डाकघर द्वारा सेवा में भिजवायेंगे। प्रेषण व्यय अतिरिक्त।

❑ ५१००.०० पाँच सहस्त्र एक सौ रुपये भेजने पर चारों वेद (१४ भाग) के साथ ४१००.०० चार सहस्त्र एक सौ रुपये की पुस्तकें भिजवायेंगे। प्रेषण व्यय अतिरिक्त।

❑ आप रुपये हमारे पंजाब नेशनल बैंक, स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी के खाता संख्या-4161000100032121 श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास (Shree Ghoormal Prahlad Kumar Arya Dharmard Nyas) IFS कोड PUNB 0416100 में जमा करवा सकते हैं। रुपये जमा करवाकर सूचना अवश्य देने का श्रम करें।

मूल्य परिवर्तन कभी भी हो सकता है। रुपये जमा करवाने के पूर्व सम्पर्क कर लेवें।

जानकारी के लिए सम्पर्क करें—09414034072, 09887452959

भारत सरकार पंजीयन नं० RAJBIL/2008/25333 डाक पंजीयन संख्या SWM-RJ-6166

100% स्वदेशी

विदेशी कंपनियों से 2 से 10 गुणा सस्ते व सबसे अच्छे
पतंजलि के ही उत्पाद खरीद कर 50% से 1500% तक की बचत करें

100% शुद्धता व प्रामाणिकता की गारंटी

1 देश का पैसा देश में रहेगा व सेवा में लगेगा
2 हमारा धन तो बचेगा साथ ही देश भी बचेगा

पतंजलि आयुर्वेद

एक ईस्ट इंडिया कंपनी ने देश को लूटा व गुलाम बनाया, अब तो 5 हजार से अधिक
विदेशी कंपनियाँ देश को लूट रही हैं... आएं! स्वदेशी अपनाएं देश बचाएं।

हमारे सभी उत्पाद एवं वैद्यों से स्वास्थ्य परामर्श सेवा आपके शहर के सभी पतंजलि
चिकित्सालयों, आरोग्य केन्द्रों, स्वदेशी केन्द्रों व आपके शहर के प्रतिष्ठित स्टोर्स पर उपलब्ध है।

पतंजलि आयुर्वेद व दिव्य फार्मेसी के सभी उत्पादों की मूल्य सूची आप हमारी वेबसाईट :
www.patanjaliayurved.org पर देख सकते हैं।

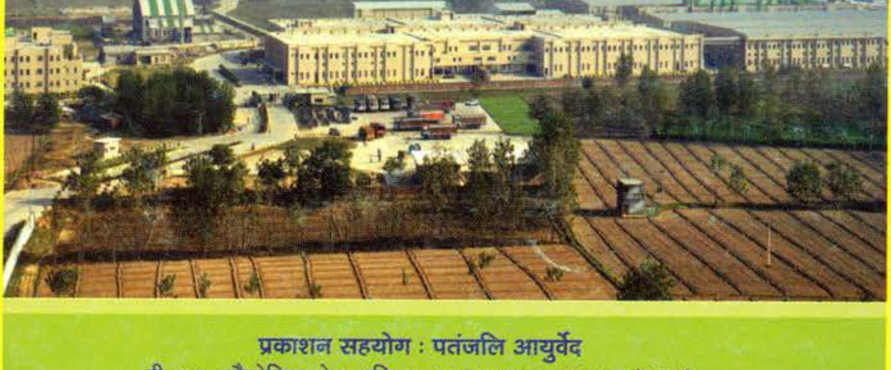

प्रकाशन सहयोग : पतंजलि आयुर्वेद
डी-38, औद्योगिक क्षेत्र, हरिद्वार-249401, उत्तराखण्ड (भारत)

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; ०९८९९६५१५०३
E-mail : smcolour@gmail.com